देसहरियाणा
साहित्यिक-सांस्कृतिक अभिव्यक्ति का मंच
वर्ष - 5, अंक - 22
मूल्य - 35/-

ISSN 2454-6879

अंक -22, मार्च - अप्रैल 2019

देस हरियाणा

912, सैक्टर-13, कुरुक्षेत्र, (हरियाणा)-136118

संपादकीय - 94164-82156

संपर्क - व्यवस्था - 99918-78352

ई-मेल : haryanades@gmail.com

Website: desharyana.in

Facebook.com//desharyana

Youtube.com//desharyana

सहयोग राशि

व्यक्तिगत: 3 वर्ष 500/, 1 वर्ष 200/-
(रजि. डाक खर्च अलग)

संस्था: 3 वर्ष 1400/-, 1 वर्ष 500/-

आजीवन: 5000/- संरक्षक :10000/-

ऑनलाईन भुगतान के लिए

देस हरियाणा, इलाहाबाद बैंक कुरुक्षेत्र

बैंक खाता संख्या - 50297128780,

IFSC: ALLA0211940

इबकी बार

हर सृजनात्मक गतिविधि बृहद राजनीतिक प्रक्रिया का हिस्सा है

ख़ौफ़ बेचा जा रहा बाजार में कम दाम पर
क्योंकि ज़ालिम को मुनाफे में तबाही चाहिए
- हरेराम समीप

सत्रहवीं लोकसभा के लिए देश में चुनाव हो रहे हैं। लोकतंत्र में चुनावों की बड़ी अहमियत होती है, चुनाव सिर्फ सरकारें बदलने का ही अवसर नहीं होते, बल्कि इसमें विभिन्न पार्टियों के लिए अपने चुनाव घोषणा पत्रों और नेताओं के माध्यम से देश के भविष्य की योजनाओं पर अपनी सोच, मंतव्य साझा करने का अवसर होता है।

राजनीतिक संस्कृति के हमारे मॉडल की विडम्बना ही है कि उम्मीदवारों व दलों की हार जीत व जातिगत समीकरणों की चर्चाओं के शोर-शराबे में ही चुनाव सिर से गुजर जाता है। मतदाताओं या नागरिकों के राजनीतिक, नीतिगत और व्यवस्था-तंत्र के ज्ञान में इजाफे से कोई संबंध नहीं रहा।

नेता सिर्फ हाथ जोड़कर मतदाताओं से जीत की अपील करते हुए चलते हैं। अपनी रचनात्मक उपलब्धियों और भविष्य की योजनाओं के बारे में राजनीतिक पार्टियों का नेतृत्व शायद कोरा ही होता जा रहा है इसीलिए शायद प्रतिद्वंद्वी पार्टियों के नेताओं पर छींटाकशी और जीवन वास्तविक समस्याओं को छोड़कर भावनात्मक बातें ही अधिक करते हैं। एक-दूसरे को नीचा दिखाने और तिरस्कार करने में इस तक होड़ लगी है कि स्वतंत्रता से पहले और उसके बाद की हमारी तमाम भौतिक और मूल्यगत उपलब्धियों को रेत में मिलाने की कोशिशें की जा रही हैं।

रोजगार, शिक्षा, स्वास्थ्य जैसे मूलभूत सवालों व सामाजिक-आर्थिक समस्याओं पर चुप्पी सत्तासीन दलों की नाकामी का प्रमाण ही कही जाएगी। विदेश नीति, राष्ट्रीय सुरक्षा, सेना व शहीदों का राजनीतिक लाभ लेने के लिए भी जीभ लपलपा रही है। जनता जहां अपने जीवन की समस्याओं के समाधान चाहती है, राजनीतिक पार्टियां उनको जुमलों की भुलभुलैया में फंसाने की जुगतें लड़ा रही हैं। इस काम के लिए राजनीतिक पार्टियों ने अपनी प्रचार रणनीति को बड़ी-बड़ी कंपनियों को ठेके पर दे दिया है।

राजनीतिक पार्टियों का जनता से लगाव-जुड़ाव घटता जा रहा है और परिणामस्वरूप अपनी जीत सुनिश्चित करने के लिए निकम्मे-निठल्ले बाबाओं, घोर अपराधियों, सिने-सितारों और खिलाड़ियों की गैर-राजनीतिक लोकप्रियता के बल पर सत्ता हासिल करने के लिए उन्हें चुनावों में उतार रही हैं। लगता है राजनीतिक नेताओं के पास देश के भविष्य की पुख्ता और विश्वसनीय योजना नहीं है इसलिए लोगों को छोटे-छोटे लालच देकर भरमा रही हैं।

राजनीतिक पार्टियों के नेताओं के बोल-कुबोल सांप्रदायिक भाईचारे, मानवीय-संवैधानिक मूल्यों व कानूनों को रौंद रहे हैं। धर्म और जाति के नाम पर गोलबंदियां करके चुनावी-फसल काटने के लिए घोर सांप्रदायिक विभाजन पर उतारू हैं। लोकशाही की स्वस्थ परंपराओं और देश की जनता के विवेक पर निरंतर हमले करके लोकतंत्र की आत्मा को जख्मी किया जा रहा है। लोकशाही के खोल में तानाशाही, राजशाही, थैलीशाही, लठशाही की प्रवृतियां फसल में खरपतवार की तरह से फलती-फूलती जा रही हैं।

हमारे लोकतंत्र की त्रासदी है कि मीडिया-प्रतिष्ठान जनता को सत्य से वाकिफ नहीं करवा रहे बल्कि झूठ

का विषैला धुंआ फैलाकर सत्य का गला घोंटने के उपक्रम में शामिल हो गए हैं। लोकतंत्र के इस खंभे से कम-से-कम उम्मीद थी कि यह जनता के अधिकारों का पैरोकार रहेगा और साहस के साथ उसकी आवाज उठायेगा, लेकिन यह पूर्णरूपेण पूंजीशाहों के एजेंट की तरह से काम करने में ही गर्व महसूस कर रहा है। मुख्य मीडिया और सोशल मीडिया ने चुनाव-चर्चा को चटखारा-चकल्लस व मनोरंजन-क्लब में तब्दील कर दिया है।

सृजन का चरित्र सामाजिक होता है और स्वाभाविक तौर पर राजनीतिक भी। हर सृजनात्मक गतिविधि बृहद राजनीतिक प्रक्रिया का हिस्सा है। सत्ता चाहे सामाजिक हो या राजनीतिक उसका चरित्र सृजनशीलता को गहरे से प्रभावित करता है। सृजनकर्मी भी राजनीतिक परिघटनाओं और प्रक्रियाओं से स्वयं को अलग नहीं रख सकते। एकांत का विलास-विलाप नहीं, बल्कि समाज की 'कट-कट' की प्रक्रिया के साथ किया गया सृजन ही विश्वसनीय होता है।

भारत में अपने अधिकारों के लिए किसानों, मजदूरों, छात्रों, कर्मचारियों, दलितों, आदिवासियों, स्त्रियों व समाज के अन्य पीड़ित वर्गों के हर रोज लाखों आंदोलन हो रहे हैं। इस ऊर्जा को एकसूत्र में पिरोकर बृदह सृजनात्मक ऊर्जा में बदलकर ही सच्चा लोकतंत्र स्थापित किया जा सकता है। लोकतांत्रिक समाज निर्माण के इस कार्य में सृजनकर्मियों को पहलकदमी करनी ही होगी।

इस अंक में—हरियाणा सृजन उत्सव

देस हरियाणा की ओर से 9 व 10 फरवरी 2019 को कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय के राधाकृष्ण सदन में दो दिवसीय हरियाणा सृजन उत्सव का आयोजन किया गया। जिसमें हरियाणा और देश भर से सृजनकर्मियों ने भाग लिया। यह बताते हुए खुशी हो रही है कि यह तीसरा सृजन उत्सव था। इससे पहले 25-26 फरवरी, 2017 व 23-24-25 फरवरी, 2018 में भी इस तरह के उत्सव हो चुके हैं।

रेखांकित करने योग्य है कि सृजन उत्सवों ने देश के सांस्कृतिक माहौल में विशिष्ट पहचान बनाई है। हरियाणा सृजन उत्सवों ने पूरे देश का ध्यान अपनी ओर खींचा है। देश-प्रदेश के रचनाकारों, कलाकारों एवं संस्कृतिकर्मियों के साथ आम जन की भागीदारी यह संकेत करती है कि लोगों में स्वस्थ संस्कृति, चिंतन एवं मनोरंजन की उत्कट चाह है।

'सृजन की परंपराएं, सरोकार एवं चुनौतियां' विषय पर बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय से सेवानिवृत्त प्रोफेसर एवं प्रख्यात समालोचक चौथी राम यादव के वक्तव्य से 9 फरवरी को उत्सव का शुभारंभ हुआ तथा 'वर्तमान दौर की चुनौतियां और सृजन' विषय पर 'अहा जिंदगी' के पूर्व संपादक, प्रख्यात पत्रकार व लेखक आलोक श्रीवास्तव के वक्तव्य से 10 फरवरी को समापन हुआ।

इस दौरान 'युवा सृजनः संवेदना, संकल्प और संकट' विषय पर केन्द्रित परिसंवाद हुआ जिसमें देश व प्रदेश के युवा लेखकों ने अपने अनुभवों के साथ-साथ सृजन के समक्ष आ रहे संकटों पर भी विचार रखे। इसमें संदीप मील(कहानीकार, जयपुर), नीलोत्पल (कवि, उज्जैन), शैलेश भारतवासी (हिन्दयुग्म प्रकाशन), एम.एम. चंद्रा (उपन्यासकार, गाजियाबाद) प्रज्ञा रोहिणी (कथाकार, दिल्ली), अरुण कुमार (दिल्ली), कुलदीप कुणाल (नाटककार, हरियाणा) व अमित मनोज (कवि, कहानीकार व आलोचक) भाग लिया।

सृजन उत्सव में लोक भाषाओं का राष्ट्रीय कवि सम्मेलन आयोजित किया जाएगा, जिसमें रामसरुप किसान (राजस्थानी), नीतू अरोड़ा (पंजाबी), आत्मारंजन (पहाड़ी), रिसाल जांगड़ा, मनजीत भोला (हरियाणवी), हेराम समीप, ब्रजेश कठिल (हिंदी) राजवंती मान, विनोद सिल्ला ने कविता पाठ किया।

हिंदी- उर्दू के मशहूर रचनाकार कृश्नचंदर की कहानी 'जामुन का पेड़' पर आधारित 'हम देर करते नहीं, हो जाती है' नाटक का मंचन हुआ। हरियाणा की साहित्यिक परंपराः हाली पानीपती एवं बाबू बालमुकुंद गुप्त विषय पर सेमिनार हुआ, जिसमें महेंद्रप्रताप चांद, सत्यवीर नाहड़िया तथा रोहतास ने विचार प्रस्तुत किए।

'अपने हीरो से मिलिए' सत्र में देश के जाने-माने अभिनेता एवं रंगकर्मी यशपाल शर्मा अपनी रंगयात्रा प्रस्तुत करते हुए अपने पसंदीदा तीन नाटकों पर अपने अनुभव सांझा किए।

हरियाणा के मनोरंजन व्यवसाय पर खुली चर्चा हुई, इसमें पॉप संगीत, फिल्में, वेब सीरीज, रागनी कंपीटिशन या अन्य माध्यमों पर परोसे जा रहे मनोरंजन के आर्थिक-सांस्कृतिक पहलुओं पर गंभीर विमर्श हुआ। मोनिका भारद्वाज, रोशन वर्मा, विक्रम दिल्लोवाल, दीपक राविश, इकबाल सिंह ने भाग लिया। इस बहस में संस्कृति के क्षेत्र में दशकों से कार्यरत सुमेल सिंह सिद्धू, (इतिहासकार व निदेशक इदारा 23 मार्च), हरविंद्र मलिक (डायरेक्टर एंडी हरियाणा) ,कमलेश भारतीय (वरिष्ठ साहित्यकार व पत्रकार) ने अपने विचार रखे।

दो दिन निरंतर दर्शकों-श्रोताओं की सक्रिय भागीदारी ने इस बहस जीवंत बनाए रखा। पुस्तक-प्रदर्शनी और पेंटिग प्रदर्शनी की सृजन-उत्सव के माहौल बनाने में अहं भूमिका रही।

ऊर्जादायी एवं सफल उत्सव के आयोजन के लिए टीम देस हरियाणा के साथियों को मुबारक। यह उत्सव बिना किसी सरकारी अनुदान व कार्पोरेट की सहायता के जन-धन से ही होता रहा है। इस उत्सव में प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष तौर पर अनेक लोगों का सहयोग है उस सहयोग से ही आशावादिता और जोश के साथ यह आयोजन हो पाया है सबका टीम देस हरियाणा की ओर से धन्यवाद।

इस दौरान विभिन्न विषयों पर गंभीर विचार-विमर्श हुआ। यह अंक इस विचार-विमर्श का दस्तावेजीकरण है।

आशा है आपको यह पसंद आएगा।

सुभाष चंद्र

युवा संवाद: संवेदना, संकल्प और संकट

□ **प्रस्तुति - राजेश कुमार**

तीसरे हरियाणा सृजन उत्सव में 9 फरवरी 2019 को युवा:संवेदना, संकल्प और संकट विषय पर परिचर्चा हुई, जिसमें युवा कहानीकार संदीप मील, युवा कहानीकार प्रज्ञा रोहिणी, उपन्यासकार एम एम चंद्रा, रंगकर्मी कुलदीप कुणाल, कवि नीलोत्पल, अरुण कुमार ने भाग लिया। इसका संचालन कहानी व कवि अमित मनोज ने किया। अमित मनोज ने प्रत्येक युवा साहित्यकार से कुछ सवाल किए जिनका उत्तर उन्होंने देते हुए बहस को आगे बढ़ाया। वर्तमान दौर के युवा लेखन के समक्ष चुनौतियों और संभावनाओं के विभिन्न पहलुओं पर हुआ जीवंत विचार विमर्श हुआ। प्रस्तुत है हिंदी-विभाग, कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय के शोधार्थी रोजेश कुमार की रिपोर्ट-सं.)

अमित मनोज: आप आज के पाठक को अपने किस्सों के जादुईपन से कैसे जोड़ें? जब आप लिखते हैं तो कौन से पाठक आपके सामने रहते हैं? या आपके लेखन के सरोकार क्या हैं?

संदीप मील: - धन्यवाद अमित जी, एक नहीं कई सवाल हैं। जब हम बात करते हैं युवाओं की, तो यह बहुत जुमले की तरह हो गया। हमें पहचानना होगा कि देश का युवा एक नहीं है और कोई एक स्थिति से वो नहीं जूझ रहा है, काफी अलग-अलग स्तरों पे उस पर संकट है और वो अलग-अलग संकटों से जूझ रहा है। जैसे मैं आपको एक उदाहरण से बताऊं-बाड़मेर में मैं कुछ दिनों पहले एक गांव में कालबेलिया समुदाय के एक युवा से मिल रहा था। वो 8वीं क्लास में पढ़ता है। उसके सामने सबसे बड़ा संकट ये है कि उसका जाति प्रमाण पत्र नहीं बना कर दे रहे। प्रशासन इसलिए नहीं बनाकर दे रहा कि तुम्हारे पिताजी का जाति प्रमाण पत्र बना होगा वो ले आओ, मेरे पिताजी तो स्कूल ही नहीं, तो माताजी का बना होगा, वो ले आओ, उनके घर में किसी का जाति प्रमाण पत्र बना ही नहीं है और इस कारण वो बच्चा अपनी स्कोलरशिप का फार्म नहीं भर पा रहा है। वो घुमंतु समुदाय से है और जो राजस्थान में बड़ी संख्या में पाया जाता है और उससे बड़ी त्रासदी की बात ये है कि सरकार के पास उनके कोई आंकड़े नहीं हैं। भारत देश में जंगलों में कितने पेड़ हैं, पशु-पक्षी कितने हैं, गाय-भैंस कितनी हैं, लेकिन ये आंकड़े नहीं हैं कि देश में युवा कितने हैं।

हम जैसे युवा लेखक खुद को युवा मानकर कहानी लिखेंगे, वो कहानी नहीं होगी, निजी क्रंदन होगा। हम जैसे युवाओं का जो देश के संसाधनों का गैर बराबरी तौर पर बंटवारा हुआ है। उनके खिलाफ ये दर्द है।

तकनीक कभी भी आपके दर्द का हिस्सा नहीं हो सकती, वह माध्यम बन सकती है। नया मीडिया आया है या जो सोशल मीडिया या तमाम तरह का मीडिया ने उन युवाओं को एक तरह की जबान दी है जो एक जमाने में उनको नहीं बोलने दिया जाता था, लेकिन तकनीक कथ्य का स्थान कभी नहीं ले सकती। वो बस बात कहने का एक तरीका है। जब आप युवाओं के संकट की बात कर रहे हैं तो मैं राजस्थान के युवाओं से काफी परिचित हूं। एक तो गांव, शहर के संसाधनों के बंटवारे में बहुत फर्क है। एक गांव का युवा है, जिसके पास रोजगार नहीं है, खेती उसकी उजड़ चुकी है। शहर के संकट अलग हैं।

जातीय उत्पीड़न शहरों में भी है, गांव में तो बहुत ज्यादा है। आज युवाओं को लेकर बहुत रोमांस चल रहा है। मीडिया से लेकर राजनेता तक। युवाओं की जिंदगी बहुत संजीदा है, बहुत बुरी भी है। इन संकटों को लेकर युवा कर क्या रहा है? युवाओं का एक बड़ा वर्ग धर्मांध हो रहा है। अपने तर्क और विवेक से कोई काम नहीं ले रहा और धर्मांध होकर हिंसा की ओर जा रहा है। आप देखेंगे कि पिछले दिनों पहलू खान की हत्या करने वाले कौन थे? वो सारे युवा हैं। वो इसी समाज से हैं। उन्हें इस तरह से तैयार करके दिमागों में नफरत के बीज इतनी गहराई से बो दिए गए हैं कि वो इंसानियत की न्यूनतम सीमाएं भी नहीं रखते। 12वीं पास करके 90 लाख युवा निकलता है और नौकरियां हैं आपके पास 7 लाख प्रति वर्ष। बाकी बचे 80 लाख युवाओं के लिए हमारे सियासतदानों के पास कोई योजना ही नहीं है।

दूसरा रास्ता है अपराध की दुनिया। वो शराब माफियाओं से लेकर भू-माफिया तक में उसे धकेला जा चुका है। एक तीसरा युवा है - उसने रास्ता अपनाया है आत्महत्या का। कोटा शहर में कोचिंग करते हैं बच्चे। वहां सैंकड़ों की तादाद में आत्महत्या करते हैं। चौथे युवा हैं वो जिन्होंने संघर्ष का रास्ता अपनाया है, किसान, मजदूर, दलित-पीड़ित, दमित के बेटा/बेटी हैं। इन चारों युवाओं की कहानियों में लेखक कौन से पक्ष के साथ खड़ा है, उसकी पक्षधरता क्या है? आपने जो जादुई यथार्थ का सवाल पूछा है, इस नाम की कोई चीज नहीं होती दुनिया में। यथार्थ तो कड़वा ही होता है। जैसे मैं आपको बताऊं बाड़मेर के एक गांव के युवा 12 कि.मी. दूर से पानी लाते हैं। अगर ये घटना आप कहानी में लिखेंगे, तो दिल्ली में रहने वाले जिनके घर 16 नल हैं, उनके लिए तो ये जादुई यथार्थ है ना।

अमित मनोज: - आप गांव से हैं, जो गांव के युवा लेखक तो सोशल मीडिया तक ही सीमित हैं। अब उन्हें ये मालूम नहीं कि छपना कैसे है?

संदीप मील: - गांव में भी एक तरह का युवा नहीं है। वहां भी जातीय वर्चस्व है। दलित और पिछड़ा चाहे गांव से या शहर से उसके छपने में संकट है। क्योंकि हमारी जो शिक्षा व्यवस्था है, उसको सृजन से बिल्कुल ही अलग कर दिया है। आधुनिक शिक्षा में आईआईटी और मैनेजमेंट के जो संस्थान हैं, उनमें सबसे अधिक असफल वो विद्यार्थी होते हैं, जो सबसे ज्यादा संवेदनशील हैं। हमने एक ऐसी दुनिया बना रखी है, जिसमें जो सबसे ज्यादा संवेदनशील या सृजनशील है, उसको हम हेय दृष्टि से देखते हैं। तो उस युवा के सामने बहुत गहरे संकट हैं और अखबारों, पत्रिकाओं तक तो उसकी पहुंच ही नहीं है। गांव में पुस्तकालयों का बहुत अभाव है।

अमित मनोजः प्रज्ञा रोहिणी जी मन्नत टेलर्स कहानी का पात्र समीर परम्परा और आधुनिकता के बीच से खुद को परम्परा से जोड़ना चाहता है, लेकिन बाजार वह सुविधा नहीं देता। एक तरह से उसे बैरंग भेज देता है। बाजार के दिनों-दिन प्रभाव ने हमारे युवाओं के लिए कई तरह की मुश्किलें खड़ी की हैं। आप अपने लेखन के माध्यम से आज के युवा को कहां ठहरा हुआ पाती हैं।

प्रज्ञा रोहिणी: - यह कहानी मैंने 2016 में लिखी थी और जनवरी 2017 में यह प्रकाशित हुई थी। समीर उसमें नायक है। कहानी में मेरी कोशिश रही कि पिछले सालों में बाजार के रूप दिखाने की कोशिश रही। मेरी नजर में बाजार मोटे तौर पर तीन बार बदला। एक पुराने गली-मुहल्ले का बाजार हुआ करता था। जहां लाभ कमाना तो था, पर ज्यादा होड़ नहीं थी। बंधे बंधाये निश्चित ग्राहक थे। एक-एक दुकान थी। आपस में मोहल्लेदारी का-सा भाव था।

एक बाजार हम देखते हैं, जो नवउदारीकरण के बाद आता है। इन दोनों के बीच एक ठिठका हुआ बाजार भी है, जो अपने लोकल को नहीं छोड़ पा रहा। समीर की दिक्कत ये है कि जहां वो फंसा हुआ है, जहां कहानी आकार ग्रहण करती है, समीर के पिता को रेडीमेड कपड़े कभी नहीं भाए थे। समीर भी जब बहुत परेशान हो जाता है तो वो याद करता है मन्नत टेलर्स को जहां दर्जी थे रसीद भाई। और रसीद भाई से संबंधों का पूरा ताना-बाना वो याद करता है। दो मोटे अंतर वो देखता है, नए बाजार में और पुराने बाजार में। मैं यहां पर ये भी कहना चाहूंगी कि बाजार भी यहां पर लोकल है। पुराना बाजार एक अलग तरह की जीवन शैली को रेखांकित करता है। नया बाजार नए तरह की जीवन शैली दिखा रहा है। पुराने बाजार में वो देखता है कि एक पूरा उद्योग है, वहां केवल दर्जी नहीं है, दर्जी का सामान बेचने वाली बहुत सारी दुकानें है। गलियों में जाता है तो बहुत सारे कारीगर हैं जो तरह-तरह की कढ़ाई-बुनाई कर रहे हैं। और जब वो नये बाजार में जाता है तब वो देखता है कि वो सारे लोग खदेड़ दिए गए हैं। वो हाशिये से भी परे हैं। जैंटस टेलर्स की हैसियत सिर्फ एक आल्ट्रेशन करने वाले आदमी तक की रह गई है। वो ठिठका है कि रेडीमेड का बाजार तो चरम पर है, लेकिन श्रम कितना सस्ता हो गया है।

अमित मनोजः - आपने कुछ कहानियां स्त्री को केंद्र में रखकर भी लिखी हैं। पहले के लेखन में आई स्त्री और आपके लेखन में आई स्त्री के संघर्ष या चुनौतियां क्या आप अलग समझती हैं? या दूसरे शब्दों में कहूं आपके लेखन का स्त्री पक्ष क्या है?

प्रज्ञा रोहिणीः - देखिये मुझे लगता है कि स्त्री शब्द की संरचना भी युवा शब्द की तरह ही है। स्त्री भी अपने सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक अंतर्विरोधों से बना हुआ है और वो भी एक रेखीय नहीं है, जैसे युवा नहीं है। मैं कहानी लिखती हूं और कहानी के पास जाती हूं तो कहानी से कई तरह के सवाल

करती हूं। नई सदी की कहानी से भी और अपनी पूर्ववर्ती सदी की कहानी से भी।

मैं अब जानना चाहती हूं कि क्या आपने अब स्त्री को मनुष्य मान लिया है। पहले की कहती हैं, वो खो-खू सकती है, वो वस्तु हो सकती है, वो सेवादार हो सकती है, पर मनुष्य अभी उसको बाद में मानेंगे। और फिर हम कहते हैं कि वो पुरुष की संपति में से उसकी कौन सी सम्पति है। अभी उसमें खामोश है। लेकिन मुझे जो सफलता नजर आ रही है, उसमें महिला कथाकार ही नहीं, बल्कि पुरुष कथाकार भी महिला संवेदना को लेकर बहुत अच्छा लिख रहे हैं और वो सारी बाते हैं, उसमें जो स्त्री दिख रही है, बहनापे की संस्कृति को विकसित करती स्त्री दिख रही है, वो सांप्रदायिकता विरोधी स्त्री दिख रही है, वो बाजार के खिलाफ खड़ी स्त्री दिख रही है और पिछली स्त्री में जो हाय अबला जीवन तुम्हारी....और केवल श्रद्धा हो.....जैसे विचार थे, वैसी स्त्री आज नहीं दिखाई दे रही है, वो तार्किक रूप से सम्पन्न स्त्री दिखाई दे रही है। हम संविधान की बात करते हैं लेकिन देश का संविधान कुछ ओर है और समाज का संविधान कुछ ओर है। स्त्री आगे बढ़ी है और अपने मानवीय व संवैधानिक हकों को मांग रही है।

अमित मनोजः - नीलोत्पल जी आप भारतीय ज्ञानपीठ के नवलेखन पुरस्कार से सम्मानित हैं। नीलोत्पल जी आप जिस प्रदेश से हैं (उज्जैन, मध्य प्रदेश) वह कला, साहित्य व संस्कृति के उत्सवों का प्रदेश है। किसी भी राज्य की भूमिका किसी भी लेखक की निर्माण प्रक्रिया में क्या दखल रखती है? आप अपने अनुभवों से हमें बतायें।

नीलोत्पलः - मुझे लगता है जो भी बात किसी व्यक्ति के अनुभव में आती है, वह उसके चिंतन व सृजन प्रक्रिया का हिस्सा बनती है। लेकिन कवि की कोई सीमा नहीं होती है। जो भी चीजें हमारे आसपास घटित होती हैं वो हमारी स्मृतियों का हिस्सा बनती हैं और वो समय-समय पर एक रचना में दर्ज होती हैं। जिस जगह से मैं आता हूं, उज्जैन वो काफी उन्नति भूमि है। वहां शिवमंगल सिंह 'सुमन', चंद्रक्रांत देवताले, जैसे वरिष्ठ कवि हमारे बीच रहे हैं। मुझे देवताले जी का सान्निध्य मिला है। हाल ही में विदिशा से नरेन्द्र आये हैं, वो भी काफी सीनियर पोयट हैं। मध्यप्रदेश में देखें तो कई प्रकार के रचनाकार हैं - राजेश जोशी, कुमार अंबुज, देवेंद्र श्रोत्रिय हैं, हिंदी के बड़े कवि मुक्तिबोध भी उज्जैन रहे हैं। प्रभाकर माचवे जी भी उज्जैन में रहे हैं। मालवी के भी बहुत प्रतिष्ठित कवि हैं - भवसर बा। मोरारजी देसाई के समय उन्होंने ये पंक्तियां लिखी - रथ तो चली रह्यो, पहिया वहां को वहां छै। और ये जनता को राज है। ये इमेरजेंसी के बाद के दौर की बात है। मुझे लगता है कि मध्यप्रदेश कला उर्वरक भूमि रही है साहित्य की दृष्टि से। कला के क्षेत्र में भी हम देख सकते हैं कि नाटक में भी जैसे ब ब कारंत जी, अलखनंदन जी और तनवीर जी को कौन भूल सकता है?

अमित मनोजः - आपके सामने दो युवा है एक मध्यप्रदेश का युवा है, एक हरियाणा का युवा है, लेकिन जैसे कि मध्य प्रदेश में परम्परा है, लेखक निर्माण की तो आप इसे कैसे देखते है?

नीलोत्पलः - यदि हम अपनी जड़ों से कटे हुए हैं, तो हमारा रचनाकर्म भी हवा-हवाई होगा।

अमित मनोजः - नीलोत्पल जी आप कविता लिखते हैं

और हम सब जानते हैं कि लेखन की शुरूआत कविता से होती है और कविता सबसे अधिक लिखी जाती है और प्रकाशक हमेशा रोना-रोते हैं कि कविता की किताब बिकती नहीं है। आपको क्या संकट नजर आता है।

नीलोत्पलः - मुझे लगता है यहां दो अलग-अलग बातें हैं। मैं बतौर कवि बता सकता हूं। हम कविता को शुरुआत के तौर पर देखते हैं। कविता का जन्म क्यों हुआ? हमें इसकी जड़ में जाना होगा। कविता को सर्वप्रथम आदि कवि वाल्मीकि ने दर्ज किया था। ऐसी मान्यता है कि जब वो तमसा नदी के तट पर विचरण कर रहे थे, ऋषि भारद्वाज के साथ तो एक व्याध ने क्रौंच नर का वध कर दिया था, जब वो मैथुनरत थे। तो जो वो मादा क्रौंच थी, वो शोक में डूबी थी, उसी को लेकर महर्षि वाल्मीकि के मुख से पहला श्लोक फूटा था कि हे व्याध तुम्हें कभी शांति न मिले, क्योंकि तूने उस क्रौंच पक्षी को मारा जो निरपराधी था और प्रेम में लीन था। मुझे लगता है कि कविता का जन्म पेथास (pethos) और करूणा के रूप में हुआ है हमारे यहां। वो दूसरों की संवेदना समझने का मर्म भी है वो। करूणा, प्रेम और संवेदना बिकने वाली चीज नहीं है, इसी तरह कविता भी बिकने की चीज नहीं है।

अमित मनोजः - क्या प्रकाशक भी बिकने वाली चीज ही प्रकाशित करे?

नीलोत्पलः - मुझे लगता है कि हमें अच्छी रचना पर भरोसा करना चाहिए। इसके दो-तीन उदाहरण देखने को मिलते हैं। मुक्तिबोध का पहला कविता संग्रह उनकी मृत्यु के उपरांत प्रकाशित हुआ। लेकिन जिस तरह से मुक्तिबोध का नाम है कविता में। प्रकाशक को भी ऐसे कवि खोजने चाहिएं जो अच्छी रचनाएं लिख रहे हैं।

अमित मनोजः - शैलेश भारतवासी जी पहले प्रकाशक को एक दुर्लभ मंजिल के रूप में भी देखा जाता था। लेखक बेचारा रचनाएं लिख लेता था और प्रकाशक के यहां बैठा रहता था और प्रकाशक छापता था तो छापता था नहीं तो महीनों पांडुलिपि रखकर लौटा देता था और कई बार तो लौटाता भी नहीं था? लेकिन आपने कुछ ढर्रा बदला। अब लेखक बिना पत्र-पत्रिकाओं में छपे आपके पास पांडुलिपि भेजता है और बेस्ट सेलर हो जाता है। अपने अनुभव से जोड़ते हुए बताइये कि आप इन सबको कैसे देखते है?

शैलेश भारतवासी जीः - धन्यवाद! एक जो आपने बात कही कि बड़ा दुर्लभ था प्रकाशक होना, इसी से जुड़ा हुआ एक प्रसंग याद कि 5-6 साल पहले की बात है। एक लेखक मित्र हमारे रामजी यादव वो भी 'गांव के लोग' करके एक लघु-पत्रिका निकालते थे। तो उन्होंने एक दिल्ली में प्रोग्राम किया, अब्दुल बिस्मिल्लाह की कहानी का पाठ करेंगे, उसमें मैं भी गया हुआ था। अब्दुल बिस्मिल्लाह की तबीयत खराब हो गई थी और वो नहीं आ पाये थे वहां पर तीन-चार प्रकाशक आये हुए थे तो सोचा चलो प्रकाशक संवाद कर लेते हैं। उसमें मैं सबसे नया प्रकाशक था और मैंने कुछ ऐसा कह दिया था, जिससे विवाद हो गया था। मुझे लगता था कि प्रकाशन का तो बहुत सरल काम है। इंटरनेट का जमाना और पांडुलिपियां खुद चलकर आपके पास आती हैं। फिर कहीं टाईप, प्रिंट करवाओ और एक ठीक-ठाक किताब आ जाती है, लेकिन बाद में ये समझ में आया कि ये ज्यादा जिम्मेदारीपूर्ण काम है।

आपने कहा कि हिंदी का जो पारम्परिक प्रकाशन है वो हिंदी की तमाम लघु-पत्रिकाएं जिनमें लेखकों की रचनाएं छपती हैं। मान लो प्रज्ञा जी की लगातार दो कहानियां 'तद्भव' पत्रिका में छप गई तो पारम्परिक प्रकाशक के कान खड़े हो जाते थे कि कोई प्रज्ञा जी हैं जो अच्छा लिख रही हैं। तो उन्होंने उनसे सम्पर्क किया या किसी आलोचक ने प्रज्ञा जी का नाम सुझाया और कहानी-संग्रह छाप दिया। हमने इससे कुछ अलग रास्ता चुना और कुछ हद तक सफल हुआ। हमें लगा कि छपी हुई कहानियां छापने से उसकी दुर्लभता या एक्सक्लुसिवनेस खत्म हो जाती है और वो ही ज्यादातर पाठक मिलते हैं, जो उसके बहुत ज्यादा मुरीद हो चुके हैं उनके लेखन के। हमने छपे हुए लेखकों से बैर नहीं किया लेकिन उनको भी जगह दी जो पहले छपे हुए नहीं थे। हमारी दृष्टि में जिनके लेखन में दम है हमने उनको भी जगह दी अपने प्रकाशन में।

अमित मनोजः - कुलदीप कुणाल जी नाटक लेखन से जुड़े हुए हैं। आपसे सवाल यह है कि नाटक तक सभी की पहुंच नहीं है। थियेटर बहुत खर्चीला है और शहर में ही है, गांव, कस्बे, छोटे शहर में नाटक पहुंचाने में आपके सामने क्या चुनौतियां हैं?

कुलदीप कुणाल : - अमित जी सबसे पहले तो मैं सवाल को अपने तरीके से ढाल लेता हूं। सबसे पहली तो बात ये है कि किस तरह का नाटक? नाटक तो पहले से गांव तक पहुंचा हुआ है। रामलीला होती रही है। अब तो नाटकों के छोटे-छोटे फेस्टीवल कस्बों में हो रहे है, लेकिन मुझे लगता है कि उनके रूप पर बात करनी सबसे जरूरी है। गांव में आते हैं नाटक दिखाने तो बीवी का मजाक बनाया जा रहा है, सब लोग तालियां पीट-पीट कर हंस रहे हैं। औरत की एक स्टीरियो टाईप ईमेज बनाई जा रही है।

आजकल स्टैंड-अप कोमेडियन का दौर चला हुआ है। लोग आजकल फोन में भी नाटक देख रहे हैं। इसीलिए उनको जरूरत महसूस नहीं हो रही लाईव मीडियम की। नाटक लोगों की रूचि के हिसाब से ही बन रहे हैं हम खुद रामलीला कम उसमें ट्विंकिल का डांस होता था, हम वो देखने जाते थे। सुभाष जी, शुभा, मनमोहन आदि के सान्निध्य से ये बदलाव मेरे अंदर आया है। हर आदमी को तो ये रास्ता नहीं मिलेगा।

हमारी जो नाटक देखने की ट्रेनिंग है वो ही बाधित है। सुर्पणखा का नाक कट रहा है और नकलिया उसका मजाक उड़ाता था और हम हंसते थे। किसी ने ये नहीं समझाया कि ये गलत हो रहा है। मेरे हिसाब से तो नाटक पिज्जा है आर्डर दे दिया और खा लिया। तो सबसे पहले यही तय करना पड़ेगा कि किस तरह का नाटक?

जितना मेरा अनुभव है नाटक जितना मुश्किल गांव-कस्बे में पहुंचना है, उतना ही मुश्किल महानगर में पहुंचना है। हम नाटक के माध्यम से स्वस्थ मनोरंजन करना चाहते हैं। आर्थर मिलर ने एक बात कही है-ट्रैप दा ऑडियंस। हमने डोर-टू-डोर थियेटर शुरू किया है दिल्ली में। हम तीन लोग जाते हैं घर में नाटक करते हैं और उन्हें दिखाते हैं औरत का रसोई घर में क्या रोल और बेडरूम का रोल क्या है? हम उनको चैलेंज देकर आ जाते हैं और उनसे पैसे भी ले आते हैं। हम प्रयोग करने वाले लोग हैं और प्रयोग होने चाहिएं नाटक में। क्योंकि नाटक सम्पूर्ण विधा है।

एक छोटा सा अनुभव है - एक फिल्म सूट हो रही थी पंजाब में 'दो दूणी पंज' एज्युकेशन पर। उस फिल्म के डायरेक्टर मेरे पहचान के हैं तो मैं उनके सेट पर गया हुआ था। एक सेट-अप में 'देस हरियाणा' मैग्जीन टंगी हुई वहां पे और वहीं फिल्म का रोल हो रहा था। पंजाबी फिल्म है और मैग्जीन 'देस हरियाणा' टंगी हुई है मैंने उनको कहा ये कौन लेकर आया? वो बोले मैंने तो मंगवाई है। मैंने कहा क्यों? तो वो बोले कि इस मैग्जीन की इमेज बहुत ही सिंसियर है। हमने 'देस हरियाणा' छापी और वो जरूरतमंदों तक पहुंच रही है।

अमित मनोज: - अरुण जी आप अंबेडकरवादी लेखक संघ से जुड़े हुए हैं। आपकी दृष्टि में अम्बेडकरवादी विचारधारा से जुड़े लेखक के सामने क्या चुनौतियां और संकल्प हैं?

अरुण जी: - सबसे पहले "देस हरियाणा' की पूरी टीम का धन्यवाद करना चाहूंगा जो युवाओं पर कार्यक्रम रखा। हमारे सामने सबसे बड़ी चुनौती यही आती है कि मुख्यधारा के साहित्य से इतर एक साहित्यधारा मानते हैं। अगर मैं हिंदी बेल्ट की बात करूं तो 1980 के बाद दलित लेखन सामने आया है और पिछले 40 वर्षों में दलित आत्मकथाओं ने जो एक स्थान बनाया है, वो मुख्यधारा के किसी भी साहित्य में नहीं है। आज हम लोग अपना दर्द बयान करने लग गए हैं। प्रेमचंद अगर हाशिये के व्यक्ति की कोई बात करते हैं तो वो उसे लिखकर बहुत बड़े लेखक हो जाते हैं, लेकिन उसी के बीच में से एक व्यक्ति आकर के जब लिखता है तो क्या कारण है कि कोई भी आलोचक अपनी आलोचना के दो शब्द खर्च करना नहीं चाहता। एक तो ये संकट बड़ा संकट है। दूसरा जो चौथीराम यादव ने उद्घाटन सत्र में जो बात कही कि जो बाबा साहेब भीमराव अम्बेडकर की जो वैचारिकी है - समता, समानता और बंधुत्व। चूंकि हमारा जो समाज है, वो जातियों में विभाजित समाज है और आज भी हम समानता के लिए प्रयासरत है, संघर्षरत हैं। मेरा हरियाणा और राजस्थान से संबंध है, मैं बार्डर का व्यक्ति हूं। भले ही आज हमारा एक पैर 21वीं सदी में है, लेकिन आज भी हम 15वीं-16वीं शताब्दी में जी रहे हैं। दलित लेखन में जो चर्चित व्यक्ति हुए उनका लेखन तो सबके सामने आ रहा है। उनके लिए तो प्रकाशक की सम्पूर्ण सुविधाएं मान सकते हैं हम। लेकिन जो ग्रामीण क्षेत्र में बैठकर लिख रहा है, उसके लिए हमने क्या स्पेस तैयार किया है। मैं लेखक संगठन से हूं, लेकिन मैं लेखक संगठन को भी कटघरे में खड़ा करता हूं कि लेखक संगठन भी इस ओर ध्यान नहीं देते हैं।

अमित मनोज: - पहले के दलित लेखन और आज जो

युवा लिख रहा है, उसमें फर्क महसूस करते हैं?

अरुण जी: - दोनों में अंतर है। बाबा साहब ने जिस धरातल पर संघर्ष किया, वहां से उपज कर हिंदी बेल्ट में पहुंचा है। हिंदी बेल्ट तक पहुंचते-पहुंचते काफी वक्त उसे लगा। 1980 तक-दलित लेखक अपनी पीड़ा को सबके सामने रखता है। शिक्षा का वहां अभाव था, ज्यादा पढ़े-लिखे नहीं थे, अपनी पत्रिकाएं नहीं थी, अपने प्रकाशन नहीं थे। जैसे ओम प्रकाश वाल्मीकि की 'जूठन' से पहले मोहनदास नेमिषराय 'अपने-अपने पिंजरे' लिख चुके थे, लेकिन वो प्रकाशित नहीं हुई थी। उस समय जो लिखा गया, उसमें प्रतिरोध है, आक्रोश है। पिछले 40 वर्षों में शिक्षा के कारण परिस्थिति जो बदली है और आज का युवा विश्वविद्यालय से पढ़कर जो निकल रहा है या जो आंदोलन से निकल रहा है, तो वो आज का लेखन कर रहा है। दलित लेखन के लिए भोगा हुआ यथार्थ सामने रखता है। मैं काम भी कर रहा हूं - दलित कविता का दूसरा स्वरूप और इसी बदलाव को अपनी आलोचना की किताब में दर्ज भी कर रहा हूं।

अमित मनोज: - एम.एम. चन्द्रा जी भारत किसानों का देश है। किसानों की ऐसी समस्या है जिसका समाधान अभी तक नहीं हुआ। और न निकट भविष्य में ऐसा नजर आता है कि किसान संकटों से मुक्त हो और खेती-किसानी चाव से करे। 'यह गांव बिकाऊ है' आपका हाल ही में प्रकाशित उपन्यास है और 'अघोघ' इसमें एक विचारशील युवक है। कम उम्र में इतनी समझ वाला अघोघ और उसी की उम्र के आम युवाओं की संवेदना के बारे में आप क्या सोचते हैं?

एम.एम. चन्द्रा: - धन्यवाद साथी, पहला तो ये कि आजादी के बाद ऐसी कौन सी समस्या है जिसका समाधान हुआ है। चाहे वो जाति का सवाल हो या किसान-मजदूर का सवाल हो। सृजनशीलता के बारे में तीन बातें महत्वपूर्ण हैं - पहली (जो मेरी मान्यता है) सृजनशीलता हमेशा सामाजिक होती है, यह किसी की बपौती नहीं। दूसरी सृजनशीलता जन्मजात नहीं होती है यह कोई दैवीय शक्ति नहीं। तीसरी-सृजनशीलता हमारी परम्परा से आती है, जिसका जिक्र चौथीराम यादव जी कर रहे थे। सिर्फ परम्परा ही ऐसी चीज है, जो लेखक धारण करता है, जो या तो बना देती है या बिगाड़ देती है। जब मुक्तिबोध का सवाल आता है, तो मुक्तिबोध इसलिए मुक्तिबोध बने कि उन्होंने अपने समय की चुनौती को स्वीकार किया।

असल में यह संकट किसानों, मजदूरों का संकट नहीं, हमारी संसदीय राजनीति का संकट है। तमाम राजनीतिक पार्टियां 1990 तक आते-आते केंद्र व राज्य में अपनी सरकारें स्थापित कर चुकी थीं। लेकिन किसानों व मजदूरों का सवाल फिर भी ज्वलंत रहा। मतलब संसदीय राजनीति के द्वारा किसानों व मजदूरों की समस्या का समाधान नहीं किया जा सकता अघोघ यह सवाल उठाता है। 'यह गांव बिकाऊ है' यह उपन्यास दो भागों में आया है - प्रोस्तोर। प्रोस्तोर में 1990 की घटना है। मंदिर आंदोलन और मजदूर आंदोलन दोनों आमने-सामने खड़े हैं। उसमें मजदूर कहते हैं कि किसान हमारे साथ आ जाओ। लेकिन किसान कहते हैं कि हम पर कोई प्रभाव ही नहीं पड़ा है तो हम आपका साथ क्यों दें? और मजदूर आंदोलन राम मंदिर की बलि चढ़ गया। आज हालात ये हैं कि किसान दिल्ली तक आ गए हैं, लेकिन मजदूर एकता स्थापित नहीं कर पा रहे हैं।

आज नाट्य, कला, संस्कृति, विचारधारा तमाम चीजों पर संकट है। आज साहित्य को अलगाववादी बना दिया है। कवि कहता है कि जो कवि नहीं है, वो साहित्यकार नहीं है, कहानीकार कहता है जो कहानीकार नहीं है, वो साहित्यकार नहीं है। यही हाल उपन्यासकार, नाटककार, आलोचक का है।

सारी दुनिया में तानाशाह पैदा हो रहे हैं। उसी की वजह से हमारे यहां तानाशाह पैदा हो रहे हैं। ये पूरी दुनिया का संकट है। मार्क्सवाद ने जादुई यथार्थवाद को नष्ट करने के लिए पूरी थिसिस लिख दी कि जब तक जादुई यथार्थवाद का नाश नहीं करोगे, तब तक आप यथार्थवाद को जमीन पर स्थापित नहीं कर सकते।

युवा जब अपनी अनघड़ भाषा में लिख रहे हैं तो वरिष्ठ साहित्यकार अपनी आंखों पर पट्टी रखकर खर्राटे लेने की कोशिश कर रहे हैं। उन्हें युवाओं की दृष्टि से भी देखने की जरूरत है। आज हमें सिर्फ मार्क्स और अंबेडकर की ही जरूरत नहीं, बल्कि हमें उन सबकी जरूरत है, जिसमें भी समाज को आगे बढ़ाने में अपना योगदान दिया है।

अमित मनोज: - युवा लेखकों के पास क्या समाधान है इन सब संकटों का?

एम.एम. चन्द्रा: - दोस्तो! विकल्प का मसला तो हमारी जिंदगी से जुड़ा हुआ है। हमारे अस्तित्व से जुड़ा हुआ है। हम बार-बार कहते हैं कि आप अस्तित्वमूलक और अस्मितामूलक साहित्य को आपस में भिड़ा क्यों रहे हो? ये दोनों एक चीज हैं, दोनों की लड़ाई एक है और जब तक दोनों मिलकर नहीं लड़ेंगे तो ना किसान बचेगा न मजदूर बचेगा। न हमारे यहां का नौजवान बचेगा। जो विकल्प की बात है भगत सिंह ने एक बात कही थी - युवा जैसा समाज बनाने का सपना देखता है, उसे झोंपड़ियों तक ले जाने की जरूरत है। खाए-पीए अघाये लोग कभी समाज नहीं बदला करते मेरे दोस्त! समाज वो ही बदलेगा जिसके सिर पर पड़ी है। तो मिलजुल कर संकल्प ले और अलगाव को तोड़ें। □□

सामंती व्यवस्था से टकराता साहित्यकार

□ बी. मदन मोहन □ प्रस्तुति—विकास साल्याण

तीसरे हरियाणा सृजन उत्सव के दौरान 9 फरवरी 2019 को 'लेखक से संवाद' सत्र का आयोजन किया गया। जिसमें हिमाचल के प्रख्यात साहित्यकार एस.आर. हरनोट के साथ श्रोताओं ने संवाद करना था, लेकिन स्वास्थ्य के चलते वे पहुंच नहीं पाए। एम एल एन कालेज, यमुनानगर में हिंदी के एसोसिएट प्रोफेसर बी.मदनमोहन ने उनकी रचनाओं से परिचित करवाया और उनकी रचनाओं के सामाजिक सरोकारों व सौंदर्य-शिल्प पर चर्चा की। प्रस्तुत है विकास साल्याण की रिपोर्ट -

एस.आर. हरनोट वर्तमान समय के हिमाचल व हिन्दी के वरिष्ठ कथाकार व साहित्यकर्मी हैं। हिमाचल व देशभर में होने वाली साहित्यिक गतिविधियों से लगातार जुड़े रहते हैं। अब तक उनका एक उपन्यास और छः कहानी संग्रह प्रकाशित हुए हैं, जो निरन्तर चर्चा में रहे हैं। हाल ही में 'कीलें' और 'लिटन ब्लॉक गिर रहा है' नामक दो कहानी संग्रह प्रकाशित हुए हैं। 'लिटन ब्लॉक गिर रहा है' कहानी संग्रह की चर्चा पूरे हिन्दुस्तान में बड़ी ही गंभीरता के साथ हुई है। उनके रचना-संसार में दो-तीन पक्षों को गहराई से देखने और रेखांकित करने की आवश्यकत्ता है। एक पक्ष तो यह है कि एस.आर. हरनोट बहुत लम्बे समय से साहित्य रचना कर रहे हैं, परन्तु आज से दस वर्ष पहले तक भी हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय उन्हें एक लेखक के रूप में स्वीकार करने के लिए भी तैयार नहीं था। दूसरा पक्ष यह है कि आज से दस वर्ष पहले हिन्दी के आलोचकों ने भी उनके रचना-संसार का अच्छे से नोटिस में नहीं लिया था, जबकि उनकी रचनाएँ 'जीन काठी और अन्य कहानियां', 'दारोश' और खासतौर से उनका उपन्यास 'हिडिम्ब' महत्वपूर्ण कृतियां हैं।

हिमाचल एक देवभूमि है, वहां के साहित्य में प्रेम-प्रसंग और थोड़ा बहुत संघर्ष दिखाया जाता था हिमाचल प्रदेश की संस्कृति में जो सामंती व्यवस्था के अवशेष बचे हैं और जो शोषण का शिकार वहां का आम-आदमी होता है। हरनोट जी ने अपनी पहली ही कहानी से इस सामंती व्यवस्था से टकराने और उसे तोड़ने की कोशिश की है।

हिमाचली व्यवस्था में बहुत सारी विविधताएं देखने को मिलती हैं। दो तरह की व्यवस्था है एक तरफ तो शोषणकर्ता हैं और दूसरी तरफ शोषित हैं। एस.आर. हरनोट दूसरे वर्ग के साथ खड़े हैं। अपनी पक्षधरता के साथ सामंती ढ़ांचे को तोड़ने का काम किया है।

हिमाचल प्रदेश में परम्पराओं के नाम पर भी बहुत सारा दोहन होता है। कुछ परम्पराएं तो ऐसी हैं जिनके बारे में ज्यादातर लोग परिचित नहीं हैं। मसलन बहुपति प्रथा। किन्नौर के इलाके में यह प्रथा प्रचलित है। एस.आर. हरनोट की कहानी 'दारोश' इसी प्रथा पर केन्द्रित है। दारोश का अर्थ है - जबरदस्ती विवाह।

'दारोश' कहानी में चार-पांच युवक एक लड़की को जबरदस्ती उठाकर ले जाते हैं। उस लड़की की छोटी बहन इसके खिलाफ लड़ाई लड़ती है और कोर्ट का सहारा लेती है। कोर्ट का फैसला लड़की के हक में आता है। लड़की उस गांव में अकेली जाती है और इस पूरी व्यवस्था से टकराती है और अंततः लोगों को एकजुट करके इस मुहिम में कामयाब होती है।

ये परम्पाएं भीतरी हिमालय के लेह-लद्दाख से चलकर, हिमाचल के किन्नौर जिले में और आगे उत्तराखंड से सिक्किम तक फैली हुई है। इसके अलावा हिमाचल में बहुपति प्रथा भी प्रचलित है। इसमें लड़की परिवार के किसी एक लड़के से विवाह करती है, उसके पश्चात परिवार में सब भाइयों की पत्नी बन जाती है। उसकी संतान का पिता कौन है इसके निर्णय का अधिकार उस महिला का होगा।

हरनोट की विशेषता है कि एक ओर तो वो नागार्जुन की परम्परा को जीते हैं। इनकी कहानियों और उपन्यास में कहीं तो 'वरूण के बेटे' उपन्यास की पात्र मदुरई दिखाई देती है, कहीं 'बलचनमा' का बलचनमा दिखाई देता है। उनकी कहानी में 'मिट्टी के लोग' में उसका मुख्य पात्र मोती तो सरपंच और प्रधान के आगे हथियार डाल देता है और बैंक से जो कर्ज लिया हुआ है उसको न चुकाने की वजह से अपनी गाय प्रधान को सौंप देता है। लेकिन उसकी महिला पात्र दरांती उठा लेती है और कहती है - "कि उसकी क्या हिम्मत जो हमारी गाय को अपने वहां ले गया" वह उसके घर जाती है और दरांती दिखाती हुई गाय को वापिस अपने घर ले आती है। सरपंच और प्रधान इस सारी घटना को खड़े-खड़े देखते रह जाते हैं। गोदान की कथा इसके विपरित है उसमें होरी व धनिया सारे जीवन संघर्ष करते रह जाते है और अंत में धनिया की स्थिति ऐसी नहीं होती कि वह गाय को अपने घर में रख पाए लेकिन हरनोट की कहानी की मंगली गाय को लेकर आती है।

हरनोट अपनी कहानियों में हिमाचल प्रदेश की भौगोलिक परिस्थितियों का अति सुन्दर चित्रण करते हैं। उसके साथ वहां के खासकर दलित तबके के लोगों के अभावों और उनके जीवन संघर्ष का गहराई से चित्रण करते हैं। उनके साहित्य में हमें एक नए हिमाचल की तस्वीर दिखाई देती है। एक इंसान के रूप में हरनोट जी जितने विनम्र है, एक साहित्यकार के रूप में वे उतने ही कठोर वे परिस्थितियों से समझौता नहीं करते। अंत में हरनोट जी के व्यक्तित्व के लिए शेर है।

ये सारा जिस्म झुककर बोझ से दोहरा हुआ होगा
मैं सज़दे में नहीं था, आपको धोखा हुआ होगा

□□

हरियाणवी ग़ज़ल

□ **रिसाल जांगड़ा**

1

आया था तूफान गया।
लूट कै सब सामान गया।

रोवैं खड़े पुराणे लोग,
इनका आदर मान गया।

हो कै दुनिया तै बदनाम,
बड़बोल्ला इनसान गया।

कौण अमर सै दुनिया म्हं,
रावण का अभिमान गया।

मन म्हं रहग्यी मन की बात,
घर आया मैहमान गया।

उसका साथी नहीं 'रिसाल',
जिसका दीन-इमान गया।

2

दुनियासं म्हं इन्सान ढूंढर्या सूं मैं तो।
न्यूं समझो भगवान ढूंढर्या सूं मैं तो।

बदल दिया सै कती बखत नै नकसा देख,
कदीमी मेरा मकान ढूंढर्या सूं मैं तो।

करें बैठे सैं कबजे लोग नजैज उरै,
बस्ती म्हं समसाण ढूंढर्या सूं मैं तो।

मैह्जत म्हं तौं शंख ढूंढै चै ना ढूंढै ,
मंदिर म्हं अज्जान ढूंढर्या सूं मैं तो।

घणा बावला मेरे तै सै कौन 'रिसाल',
धरती पै असमान ढूंढर्या सूं मैं तो।

3

सुत्ती होई राड़ जगाणी ठीक नहीं।
बिन सिर पां की बात बधाणी ठीक नहीं।

इसकै निच्चै धधक रह्ये सैं अंगारे,
उप्पर तै या राख हटाणी ठीक नहीं।

भला बुरा था जो था ओ जग छोड़ चल्या,
इब उसकै सिर तोह्मत लाणी ठीक नहीं।

हो ज्यांगे यें तेरे कपड़े दागमदाग,
डळी कीच म्हंग सहम बगाणी ठीक नहीं।

जमान्ने गेल बदलणा घणा जरूरी सै,
नवे दौर म्हं चाल पुराणी ठीक नहीं।

तौं समझै सै इस म्हं अपणी टोर 'रिसाल'
खाट गळी कै बीच बिछाणी ठीक नहीं।

वर्तमान दौर की चुनौतियां और सृजन

□ वक्तव्य - आलोक श्रीवास्तव □ प्रस्तुति: गुंजन कैहरबा

10 फरवरी 2019 को तीसरे हरियाणा सृजन उत्सव के समापन अवसर पर प्रख्यात साहित्यकार व 'अहा जिंदगी' पत्रिका के पूर्व संपादक आलोक श्रीवास्तव ने 'वर्तमान दौर की चुनौतियां और सृजन' विषय पर वक्तव्य दिया। प्रस्तुत उनका वक्तव्य जिसका लिप्यंतरण किया है पत्रकार गुंजन कैहरबा ने)

गुजरी सदी ने सपने देखे थे
उसकी तलाश में झुलस गए थे उसके पंख
समय में छूट गए उसके आंसू, उसकी व्यथा
जिनमें गांधी से एक मृत जाति के स्वाभिमान के स्पंदन की तरह
भगत सिंह से प्रेम के शिखर की तरह
गुजरी महानता के गीत गाए
हम रोक नहीं पाए
जुते खेत पर कोई फसल
अब कौन उसे काटेगा, तुम तो हरगिज नहीं
तुमने गंवाया है एक युद्ध
एक सदी एक शिकायत की तरह
हमेशा तुम्हारे सिरहाने खड़ी रहेगी
विचित्र रिश्ता बना हमारा
गुजरी सदी से
हमने सब कुछ किया बजाय मेहनत के
और सदियों गंवाया एक युद्ध
और यह सदी एक शिकायत की तरह
हमेशा तुम्हारे सिरहाने खड़ी रहेगी

20वीं सदी से गुजर कर पहुंचा है भारत की गलियों, गांवों, शहरों, हमारी व्यवस्थाओं, हमारे जीवन, हमारी आशाओं-आकांक्षाओं और कुंठाओं तक यह वर्तमान समय। हम भारत के संदर्भ में अपने सवालों, अपनी सदी की चिंताओं को, अपनी संस्कृति को, अपने साहित्य को, अपने सृजन को देखते हैं। लेकिन उनका संदर्भ तो वैश्विक है। क्योंकि औद्योगिक क्रांति, उपनिवेश और उसके बाद विश्व युद्ध और फिर वैश्विक आर्थिक व्यवस्था ये है।

सृजन की सबसे बड़ी समस्या है जो हमारे दौर की उसका जो अंतिम सूत्र मुझे समझ में आता है, वो यह है कि जब बड़े

विचार जन्म लेते हैं। बड़ी कृतियां जन्म लेती हैं। बड़ी रचनाएं जन्म लेती हैं और वो अपने समय को बदलती हैं। ऐसा क्यों होता है? और हम बड़ी आसानी से मान लेते हैं कि बड़ी प्रतिभा आसमान से उतरी है। बड़ी प्रतिभा ने कुछ लिख दिया। महान विचार कर दिया। ऐसा होता नहीं है। सच्चाई यह होती है कि उस महान को तलाश लिया जाता है।

मैं इसका बहुत विश्लेषण करता हूं कि सत्तर साल हिन्दुस्तान की जमीन पर किस तरह गुजरे हैं। इस बारे में गहनता से सोचने की जरूरत है। क्या सचमुच सत्तर साल वैसे थे क्योंकि इन सत्तर सालों पर एक टिप्पणी जय प्रकाश नारायण ने की थी, एक टिप्पणी लोहिया ने की थी। तब सत्तर साल पैंतीस ही हुए थे अब सत्तर हुए हैं। तो क्या सचमुच ये सत्तर साल का दौर इतना

बुरा था इतना खराब था।

हिन्दुस्तान ने एक लंबी यात्रा तय की है पिछले लगभग ढ़ाई सौ सालों में। हमें इस यात्रा को बहुत बारीकी से देखना होगा। इस यात्रा में बहुत सारी गड़बडियां हैं। लेकिन बहुत ऊंचाई भी है, बहुत उड़ान भी है। पिछले इन सत्तर सालों में मेरे निजी विचार ये हैं कि देश को आर्थिक रूप से खोखला कर दिया था। जब इस तरह की गुलामी होती है तो तो ज़हन की गुलामी में बदल जाती है। स्वतंत्रता आंदोलन के समय जो मूल्य संजोए गए। जो चिंगारी और जो एक भावना थी वह आजादी के बाद धीरे-धीरे खत्म होती गई थी। बहुत सारे द्वंद्व, बहुत सारे संघर्ष और बहुत सारे मतभेद, भारत की बहुत सारी जातियताएं, बहुत सारी राष्ट्रीयताओं को सतह पर आ जाना चाहिए था और इस देश को बिखर जाना चाहिए था। अगर चीजें खराब ही होनी थी। पाकिस्तान और बांगलादेश में एक कॉमन चीज रीलीजन फोर्स। धर्म बांधने वाली चीज थी। भारत की समस्याएं पाकिस्तान और बांगलादेश से ज्यादा बड़ी थी। इसके बावजूद भारत 70 सालों में मजबूती के साथ खड़ा रहा है। अपने लोकतंत्र को इसने मजबूत किया है।

इंदिरा गांधी ने नारा दिया था - गरीबी हटाओ। गरीबी, बेरोजगारी बहुत सारी समस्याएं हैं। यह किस मुल्क की समस्याएं हैं। ये उस हिन्दोस्तान की समस्या है, जो हजारों साल की जहनी गुलामी में फंसा हुआ है। साम्राज्यवादी ने जिसकी अंतिम चिंदी तक खसोटी है। वह मुल्क कैसे गरीब नहीं रहेगा। वह मुल्क कैसे बेरोजगार नहीं रहेगा। कौन सी पार्टी इसे किस जादू से इसे बाहर निकाल लेगी। ये इस पार्टी पॉलिटिक्स से बाहर है। इस पार्टी पॉलिटिक्स में जितना कुछ बेहतर हो सकता था, वो चीजें हो रही हैं। इस लोकतंत्र के राजनीतिक चुनाव के तहत। मैं जो कहना चाह रहा हूं कि हमें एक नई अंगड़ाई की जरूरत है। एक नई करवट की जरूरत है।

मैं कहना यह चाह रहा हूँ कि हिन्दुस्तान ने काफी मजबूती हासिल की है। जो समस्याएं रही हैं वो सतह के नीचे दबी रही हैं। वो सुलग रही हैं। यहां से रास्ते दो दिशाओं में जाते हैं। एक विस्फोट की ओर जाता हैं जो अब तक थमा रहा है और एक उस सृजनात्मकता की ओर जाता है। जहां ये देश एक नई करवट ले सके। एक नई सांस्कृतिक करवट, एक वैचारिक करवट, एक आंदोलनात्मक करवट तो एक दूसरा रास्ता भी खुलता है। तो हमारा जितना सृजन है भारत की समस्त भाषाओं का-साहित्यिक सृजन, भारत की समस्त कलाओं का, उस सारे सृजन की जो आधार रेखा हो सकती है जो एक धुरी हो सकती है वो ये ही हो सकती है कि हम इस समय को वैश्विक संदर्भों में पहचानें। अपने देश के इतिहास के सही संदर्भों में पहचानें। अपने समाज की सभी समस्याओं को सही संदर्भों में पहचानें। तो ऐसी स्थिति में साहित्य की, सृजन की जिम्मेदारियां काफी बड़ी हो जाती हैं। काफी गहरी हो जाती हैं।

भारत के लिए ये समय बुरा समय नहीं है। ये समय सिर्फ यह बता रहा है कि जो कुछ इतिहास ने रचा था वो अब आती हुई सभ्यता को, एक नई सभ्यता को जगह देंगे। ये जो पीड़ा है ये जो संक्रांतिकाल है वो इसी चीज का है। ऐसी बात नहीं कि ये बहुत निराशा का युग है। ये ऐसी बात नहीं कि पुनरूत्थान का युग है। बात इतनी है कि अंदर-अंदर दो-तीन तरह की शक्तियों की टकराहट है।

जब हम सृजन के संदर्भ में बात करते हैं तो हम बात करते हैं कि हमारी भाषाओं के हिन्दी, पंजाबी, बंगाली, गुजराती, मराठी सभी भाषाओं के कवि कौन हैं। लेखक कौन हैं। उनके विचार क्या हैं। उनके आदर्श क्या हैं। तो मैंने इन बीस-पच्चीस-तीस सालों में जो सृजनात्कता की एक झलक पाई है तो मैंने देखा है कि जिसे हम सृजनात्मक संघर्ष कहते हैं हिन्दी के एक बड़े कवि मुक्तिबोध के जीवन से उस सृजनात्मक संघर्ष को समझा जा सकता है। वो सृजनात्मक संघर्ष क्या है? बहुत बड़े कवि मुक्तिबोध का आत्मसंघर्ष। मुक्तिबोध का जो लेखन है उससे गुजरने के बाद वो जिस बात की गवाही देता है वो संघर्ष इतने समय बाद के अन्य विचारों से भी प्रभावित नहीं हो सकते थे। जो जीवन को थोड़ा और गहरे अंदर तक तलाशना चाह रहे थे। वो एक विचार तक पहुंचना चाह रहे थे। उस चीज का आत्म संघर्ष था और वो मुक्तिबोध से शुरू हुआ है। खत्म नहीं हुआ है। इस संदर्भ का अभाव हिन्दुस्तान की साहित्यिक संस्कृति में बहुत बड़े स्तर पर फैलता चला गया है। चाहे वो भाषा बंगला हो, चाहे वो मराठी भी हो और चाहे हिन्दी हो। भ्रम क्या होता है कि भाषा अपना विकास करते करते, साहित्य अपना विकास करते करते उस मुकाम तक पहुंच जाता है कि बेहतर साहित्य रचा जा सके। बेहतर सहित्य रचा जा रहा है। बेहतर रचनाएं रची जा रही हैं। बेहतर कहानियां, बेहतर उपन्यास। लेकिन तुष्टीकरण वाला पहलू है। तो उसे परिवर्तनकारी साहित्य, रूपांतरकालीन सहित्य तब तक नहीं रचा जा सकता जब तक उस रूपान्तर को अपने जीवन के लिए जरूरी चीज ना समझते हों। अपने मानसिक विकास के लिए जरूरी चीज ना समझते हों। इन चीजों के संदर्भ भारत में काफी हद तक पीछे रह गया है।

जो राजनीतिक संकट है भारत का। भारत के लोकतंत्र का संकट है। भारत के समाज का संकट है। इनको हम जिन आयामों में समझते रहे हैं। उन आयामों से थोड़ा-सा बाहर निकल करके,

थोड़ा सा व्यक्तिगत जीवन के पहलुओं के समस्त विस्तारों के आयामों तक जाकर पहुंच पाना, यह हमारे दौर का सबसे ज्यादा रेखांकित करने वाली बात है, मेरी नजर से।

तीन किताबों का जिक्र है। बीबीसी के पत्रकार मार्क तुली की एक किताब का शीर्षक है- नो फुलस्टॉप इन इंडिया। भारत में कोई पूर्णविराम नहीं है। इसलिए पूर्णविराम नहीं है, क्योंकि इस समाज में अभी तो कहानियां शुरू होनी शुरू हुई हैं। जो यूरोप ने हासिल कर लिया है। भारत में बहुत बड़े समाज की दासता से मुक्ति होनी शुरू हुई है अभी। भारत में स्त्री-पुरूष का भेद खत्म होना शुरू हुआ है अभी। तो भारत जिन सामाजिक संरचनाओं के खांचों में बंध रहा है। उससे उसे मुक्ति तो अभी शुरू हुई है। तो भारत के लिए फुलस्टॉप कैसे हो सकता है। दूसरा एक शीर्षक जो मुझे बहुत आकर्षित करता रहा। वी.एस. नायपॉल जिन्हें नोबेल पुरस्कार मिला। वे तीस-चालीस साल पहले भारत आए थे और वो भारत से दुखी होकर गए थे। उनकी किताब है - ए वाउंडिड सिविलाईजेशन/आहत सभ्यता। उन्होंने भारत को ऐसी सभ्यता के रूप में देखा था, जिसका सब कुछ क्षत-विक्षत है। जो टूट-फूट चुकी है। वे चालीस साल बाद भारत लौटे। उन्होंने फिर एक किताब लिखी—इंडियाः ए मिलियन म्युट्निज नॉव। आज के भारत की स्थिति यह है कि यहां लाखों विद्रोह हैं। कमी इस चीज की है कि विद्रोहों को पिरोकर कोई बड़ा आंदोलन खड़ा हो सके। इन विद्रोहों को पिरोकर बड़ी रचनात्मकताएं आकार ग्रहण कर सकें। जब मैं कह रहा हूँ - बड़ी रचनात्मकताएं। मेरा आशय किसी एक भाषा से नहीं, सारी भाषाओं से है। भारत की समस्त भाषाओं से है। इन कारणों की पड़ताल बेहद जरूरी है। जिन्हें अग्रगामी समझते हैं, वह ओर पीछे हैं। वो इस कारण से कि जो प्रगतिशीलता के फार्मूले भारत में बन गए - कि आप किन्हीं लेखक संगठनों से जुड़ जाएं। आप किन्हीं विचारधाराओं से जुड़ जाएं। यह अपने आप में पर्याप्त है कि आप समाज को समझते हैं। अपने आप को दिलासा देने के लिए कि आप जीवन को समझते हैं। लेकिन यह पर्याप्त नहीं है। क्योंकि उसको आप राजनीति में अपघटित करके राजनीति में रिड्यूस करके, राजनीति को अपने आप में रिड्यूस करके अपने आप को देख रहे हैं। अपनी रचनात्मकता को देख रहे हैं। समय और समाज को देख रहे हैं। वो चीज कहीं नहीं पहुंचाएगी। जब तक कोई विचार या विचारधारा अपने जहन के, अपने अस्तित्व के आंतरिक सुरंगों की गलियों तक नहीं ले जाता है। जब तक आप अपने अस्तित्व को अपने संदर्भों अपनी विचारधारा के संदर्भ में फिर से अन्वेषित करने की क्षमता हासिल नहीं कर पाते हैं तो किसी विचारधारा या राजनीति से आगे बढ़ना मुश्किल हो जाएगा। वह विचारधारा सिर्फ फार्मूले का काम करेगी।

हिंदोस्तान की रचनात्मकता के लिए दो संकट हैं - एक दर्शन, जो भंवर में घुमाता है, दूसरा ऐसा प्रगतिशील स्वरूप, जो हर चीज को रेडिमेड या फार्मूले में अपघटित करके सोचते हैं। तो मुख्य बात यह है कि जिंदगी और दुनिया जहां से आगे निकल आई है। हमें अपने सृजन को फिर से जांचने की आवश्यकता है। उससे ही कोई बड़ी चीज पैदा हो पाएगी। भारत में अपार संभावनाएं हैं - सृजन की, विचारों की और उस पूरे गतिरोध को तोड़ने की जो हमारे समय का मुख्य लक्षण बन गया है। इतिहास का एक पूरा संदर्भ देखें। जो लाखों साल का पूरा एक इतिहास है। उसमें चार-पांच हजार साल की सभ्यता कोई अर्थ नहीं रखती है। उसमें भी जिस वर्तमान दौर में हम रह रहे हैं, वह चार-पांच सौ सालों का पूरा सृजन है।

अभी तो हिन्दोस्तान के इतिहास को एक नई करवट लेनी है। जैसे आधुनिक दुनिया का जन्म औद्योगिक क्रांति से, यूरोपियन रेनेसां से हुआ। फिर फ्रांसिसी क्रांति, रूस की क्रांति और क्रांतियां आती हैं। फिर उपनिवेशवाद के बाद गुलाम देशों की आजादी आती है। तीन सौ सालों में जो इतिहास घटा है।

उसका तो ठीक से सार संकलन भी नहीं हुआ है। इतिहास की ठीक से समझ भी नहीं बनी है। जो विचार पैदा हुए हैं, यूरोप की क्रांति ने एक विचार दिया। पुनर्जागरण ने जो विचार दिया। उन विचारों का तो अभी ठीक से प्रसार भी नहीं हुआ है। अभी तो यदि हम इतिहास को लंबे फलक पर देखें तो आत्मसात करने की बात करें तो उसकी प्रेरणा क्या हो सकता है। किन विचारों में हम उसके स्रोत तलाश सकते हैं।

इसका एक रास्ता मार्क्सवाद हो सकता है। क्या इतना पर्याप्त है। एक और रास्ता जाता है - पुनर्जागरण। तो यूरोपियन रेनेसां सिर्फ यूरोप के लिए नहीं था। यूरोपियन रेनेसां आया। विज्ञान जन्मा, कला जन्मी। सबने नए-नए रूप ले लिए। एक मानव जाति की प्रगति की एक घटना थी। तो उस रेनेसां का प्रसार हिन्दोस्तान में भी हुआ। आज जो हम जीवन जी रहे हैं। यह माईक, ये हॉल, ये कुर्सियां, ये कपड़े, ये मोबाइल ये सब उसी सांस्कृतिक क्रांति से उपजी चीज है। उसी क्रांति ने मार्टिन लूथर किंग को पैदा किया। उसी क्रांति ने गांधी को पैदा किया। उसी ने अंबेडकर को पैदा किया। अगर रेनेसां नहीं होता तो दुनिया के जिस भी कोने में माइनोरिटी मुक्ति का जो भी संघर्ष, वह होना असंभव था। परंतु विडंबना यह है कि रेनेसां के विचारों का जिस तरह से प्रतिफल, जिस तरह से विकास, जिस तरह से विस्तार होना चाहिए था, वह नहीं हो पाया है। तो मेरे लिए, मेरी समझ के लिए और जिन संदर्भों में मैं सृजन को देखता हूँ, मुझे जरूरी लगता है कि हम इतिहास की इस पूरी धारा को गहराई से देखें-समझें। और उसके बरक्स अपने देश के विचार-सृजन या अन्य समस्याओं को खोजने का रास्ता अपना सकें। ये बातें बहुत सैद्धांतिक लग सकती हैं। थोड़ी बहुत हवाई भी लग सकती हैं। थोड़ी बहुत मुश्किल भी लग सकती हैं। लेकिन अगर हम इनका विश्लेषण करें तो साहित्य इसका अच्छा उदाहरण हो सकता है और कविता, कहानियां तो इसका बहुत अच्छा उदाहरण हो सकता है।

एक बात मैं कहता हूँ जो आसानी से समझ में आएगी। कि भारत के साहित्य की सबसे बड़ी प्रोब्लम यह है कि वह एक मध्यवर्गीय मानसिकता से, एक बाबू मानसिकता से लिखा गया परिवर्तनकामी साहित्य है। और इसकी झलकियां साहित्य की संरचना में दिखाई पड़ती हैं। वाक्य की संरचना में दिखाई पड़ती हैं। बिंबों में दिखाई पड़ती हैं। उसके विचारों में दिखाई पड़ती हैं, एक भावना कि हम अच्छी से अच्छी प्रेम कविता पढ़ लें। किसी भी भाषा की पढ़ें। उसमें नए मानवीय संबंधों की पड़ताल का यत्न भी नहीं दिखता। उसमें भावनात्मकता दिखेगी। संवेदना दिखेगी। यह भावनात्मकता और संवेदना जो सौंदर्य की बात कही। उस सौंदर्य के साथ जो चीज जोड़ी कवि ने उसका चरित्र जोड़ा, चरित्र या करैक्टर का वो आशय जो वास्तविक आशय है। उस युग में समता के या प्रेम के जितने अधिकतम मानवीय प्रयास हो सकते थे सृजनात्मकता के उस रचना में जोड़े, इस कारण हमारे यहां रचना अमर है। यानी कि अगर हम एक प्रेम कविता, यह प्रेम कविता में इसलिए कह रहा हूँ कि ज्यादातर प्रेम कविताएं, ज्यादातर कहानियों में कहीं ना कहीं प्रेम आता है। उस प्रेम में किस चीज का वर्णन होता है? - भावना और संवेदना। लेकिन यह बात प्रश्न रह जाती है कि जिस संबंध की बात आप कह रहे हैं, उसमें संबंध का कोई नया धरातल हो सकता है। उस संबंध को किसी नई ऊंचाई तक ले जाना है। जो वर्तमान समाज उसका धरातल तय कर रहा है वह गलत है। वह मानवता विरोधी है। फिर भी आप क्रांति और परिवर्तन की बात किए जाते हैं तो आज की रचनात्मकता के संकट का मैंने एक सूत्र दिया है। यह जो पद्धति लगातार विकसित होती गई है। आप एक राजनैतिक दृष्टिकोण अपना लें परंतु आप यथार्थ के अन्य स्तरों पर ना उतरें। सच्चाई के अन्य दृष्टिकोणों पर ना उतरें और उस यथार्थ को आप अच्छे से अच्छे ढ़ंग से वर्णन कर दें, अधिकतम भावना और संवेदना के साथ तो वह वर्णन कहीं नहीं ले जाने वाला। इसी वजह से आज कितना भी अच्छा लिटरेचर क्यों ना लिखा जा रहा हो, कितना भी अच्छा सृजन क्यों ना हो रहा हो। उसको भाषा के, कंटेन्ट के, विचार के नए धरातलों तक पहुंचना ही होगा।

कुल मिलाकर बात वहां जाकर ठहरती है कि ज्ञान का भविष्य क्या है? हमारा समय ज्ञान को सूचनाओं में रिड्यूस कर रहा है। तो समय का सबसे बड़ा संघर्ष यह है कि उसे ज्ञान के लिए संघर्ष करना पड़ेगा। और ज्ञान का मतलब यह हुआ कि वह जिस तरह से जीवन को समझता रहा है। जिस तरह से खुद को समझता रहा है, उस तरह से काम चलने वाला नहीं है। मुक्तिबोध की बहुत अधिक उद्धृत की गई कविता है कि - अभिव्यक्ति के खतरे उठाने ही होंगे। इसका मतलब यह नहीं होता है कि कोई चीज जोर से बोल दीजिए और तात्पर्य यह है कि आप जिस चश्मे से भाषा के जिन झरोखों से आप दुनिया को देखते हैं, उससे बाहर निकलना होगा। अपने दायरों को समझ कर थोड़ा विस्तृत करना पड़ेगा। अभिव्यक्ति के खतरे उठाने का वास्तविक समय अब आया है। क्योंकि अब के बाद से पूर्णविराम लगना है। क्योंकि दुनिया इतनी तेज बदल रही है कि अब 18वीं-19वीं सदी की दुनिया नहीं है। कि आप सदियों तक विचार फैलाते रहें। सदियों तक जागरण करते रहें। पूरी दुनिया को तय करना पड़ेगा कि मनुष्य का अस्तित्व इस पृथ्वी पर रहना है या खत्म होना है।

और यह सिर्फ पर्यावरण की बात नहीं है। यह जीवन के समस्त क्षेत्रों पर लागू होगा। कि देशों के बीच में, समाजों के बीच में, मनुष्यों के बीच में बराबरी के न्यायपूर्ण संबंध बनने हैं या नहीं बनने हैं। इस पृथ्वी पर या अमेरिका में कोई फर्क नहीं पड़ रहा है। या अमेरिका में जो कुछ हो रहा है, उसका हिन्दोस्तान पर कोई फर्क नहीं पड़ना। ऐसी स्थितियों में सृजन के इस संदर्भ में बहुत सारी बातें मैं बहुत से उदाहरण देकर बोलना चाहता था। भारत में कि बहुत कुछ सरकारी संरक्षण के तहत चल रहा है। सरकारी संरक्षण से अपने आप को मुक्त कर सकें, तो शायद विचारों की नई दिशाओं को पढ़ सकेंगे।

दूसरी बात मुझे लगती है कि भारतीय भाषाओं में आदान-प्रदान की बहुत ज्यादा जरूरत है। एक उदाहरण देता हूँ कि बहुत साल पहले एक सज्जन मिले और उर्दू के बारे में उन्होंने कोई टिप्पणी की। बंबई की बात है। उन्होंने यह कहा कि उर्दू की किताबें हिन्दी में तो आ जाती हैं लेकिन उर्दू वाले हिन्दी की किताबों का अनुवाद नहीं करते तो हम क्यों करें। यह बात सच हो सकती है। मैंने इस बात का विश्लेषण किया। मैंने कहा कि आप उर्दू की किताब हिन्दी में अनुवाद करके किसी उर्दू लेखक पर अहसान नहीं कर रहे हैं। आप अपनी भाषा को समृद्ध कर रहे हैं। अगर आप अंग्रेजी की, पंजाबी की किसी भी भाषा से हिन्दी में अनुवाद कर रह रहे हैं। या इसके उलट बांग्ला, पंजाबी या उड़िया में हिन्दी की किताब अनुदित हो रही है तो आप हिन्दी के भंडार को समृद्ध कर रहे हैं। उसमें वह चीज ला रहे हैं जो उस भाषा में नहीं हैं। लेकिन वो प्रश्न उठा क्यों। क्योंकि हम लेखन को आत्मप्रचार का माध्यम समझते हैं। यानी अगर हम किसी उर्दू के लेखक को हिन्दी में अनुवाद कर रहे हैं तो हम हिन्दी में उसे इस्टेबलिश कर रहे हैं। प्रचार दे रहे हैं। यह तो बहुत सस्ता तरीका हो गया। उसका बहुत गलत तरीका हो गया। इसलिए अगर पंजाबी साहित्य को समृद्ध होना है तो उसको भारत की सभी भाषाओं से बड़े पैमाने पर अनुवाद करना चाहिए। अगर हिन्दी को समृद्ध होना है तो उसको बांगला, पंजाबी, मराठी और अन्य भाषाओं से अनुवाद करके अपने साहित्य को समृद्ध करना चाहिए। इसी तरह से बंगला हालांकि बांग्ला में बहुत ज्यादा है - बांग्ला ने रविन्द्रनाथ टैगोर, शरतचन्द्र पैदा किया। लेकिन यह उसका बहुत ही ऋणात्मक अल्पतम अनुवाद होंगे, तो उससे आपकी भाषा का नुकसान हो रहा है। आपके साहित्य और संस्कृति का नुकसान हो रहा है। विश्व के साहित्य का भारतीय भाषाओं में अनुवाद हो, जो कुछ भी हुआ वह नाकाफी है।

तीसरी चीज यह है कि वैचारिक साहित्य का हिन्दी में प्रचलन कम है। बाकी भाषाओं में भी कविता, कहानी और उपन्यास को बहुत ज्यादा महत्व दिया जाता है। तो अन्य विषयों को भी तरजीह मिलनी चाहिए। कुल मिलाकर साहित्य के नए तरीके खोजने पड़ेंगे। जैसे समीक्षा में होता है। तो ये जो आत्मतुष्टि का घेरा है। हरियाणा में कुछ लोगों के बीच होगा। चंडीगढ़ में कुछ लोगों के बीच होगा। एक राष्ट्रीय साहित्य, एक जन साहित्य की रचना की जरूरत है। उसकी प्रेरणा वही चीज हम अपनी अगली पीढ़ी को सौंप पाएंगे। तभी साहित्य का कोई महत्व हो पाएगा। तभी साहित्य समाज के बदलने में, नए विचारों के प्रसार में। साहित्यकार को छपास, साहित्यकारों का दोष नहीं है, संस्थाओं व सत्ताओं ने इस चीज की निर्मिति कर दी है। चारे डले हुए हैं तो डले हुए चारों के कारण लोग ऐसा करने लगे हैं। मैं सिर्फ ये कह रहा हूँ कि उन चीजों से निकलने की मनोवृत्ति पैदा होनी चाहिए। एक अलग तरह का विचार और ज्यादा गहरा होना चाहिए। विषय बहुत व्यापक है। हर व्यक्ति के मन में इस विषय के बारे में विचार होंगे। तो मेरी कही बातों ने विचारों की श्रृंखलाओं को छेड़ा हो तो बेहतर होगा।

एक छोटी सी कविता से बात सम्पन्न करता हूँ। शुरूआत में मैंने जो कविता सुनाई थी।

उसका शीर्षक था- गुजरी सदी ने सपने देखे थे।

आखिरी कविता का शीर्षक है-

पूरी एक सदी के स्वप्न

हमने जीवन के सपने देखे थे

उत्तान नदी धाराओं में प्रवाहित

ऋतुओं का रंग बन

धरा पर बिखरते सपने

पर इतनी आसान ना थी

इतिहास की कठोर बाड़ी

सपनों के पंख अग्नि पर्वतों से टकराकर झुलस गए

नए मरूस्थल उग आए

अजीब ही वीराने

विचित्र ही बंजर

इन्सानी दिमाग और फितरत के खेल में

उलझ कर रह गए

अब नया ही मुकाम है समय का

□□

खुली बहस: हरियाणवी मनोरंजन व्यवसाय

□ इकबाल सिंह

तीसरे हरियाणा सृजन उत्सव के अवसर पर 10 फरवरी 2019 को 'हरियाणवी मनोरंजन व्यवसाय' विषय पर खुली बहस हुई। इसमें भटिंडा (पंजाब) से आए संस्कृति समीक्षक सुमेल सिंह सिद्धु, एंडी हरियाणा टी.वी. चैनल के निदेशक हरविंद्र सिंह मलिक एवं प्रख्यात पत्रकार कमलेश भारतीय ने मुख्य रूप से भाग लिया। इस बहस में दीपक राविश, इकबाल, मोनिका भारद्वाज, रोशन वर्मा एवं विक्रम दिल्लोवाल ने सारगर्भित टिप्पणियां कीं। इसका संचालन मीडियाकर्मी धर्मवीर ने किया। प्रस्तुत है इस बहस की रिपोर्ट जिसे कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय के हिंदी-विभाग के शोधार्थी इकबाल ने प्रस्तुत किया है - सं.

रोशन वर्मा

इस परिचर्चा का विषय है हरियाणावी मनोरंजन व्यवसाय, किसी भी व्यवसाय के लिए एक बाजार का होना बहुत जरूरी होता है। सारा परिदृश्य जो भी रहा है वह 1983 से लेकर अब तक जितनी भी हरियाणवी फिल्में बनी उनमें एक फिल्म को छोड़कर अन्य कोई फिल्म अच्छी सफलता हासिल नहीं कर पाई। न तो हरियाणवी फिल्मों के लिए बाजार बन पाया और न ही इसे गम्भीरता से लिया गया। कुछ लोग मनोरंजन के लिए, अपने रिश्तेदारों को खुश करने के लिए अपने दिल को खुश करने के लिए फिल्म बनाते रहे हैं। लेकिन वह फिल्में दर्शकों को अपनी ओर आकर्षित करने में असफल रही। यदि इसे शुद्ध व्यवसायिक तौर पर लिया जाता तो आज हरियाणवी फिल्मों का परिदृश्य कुछ ओर ही होता।

अब जो पॉपुलर गाने आए हैं, उनमें बहुत कुछ बदलाव आया है। पहले क्या होता था कि धार्मिक गाने पर भी ऐसा टाईटल रखते थे जैसे – भोले का सेक्सी भजन। वह मानसिकता टूट रही है पिछले सालों से और जो कम्पनियाँ थी वह उसका फायदा उठा रही थी। लेकिन धीरे-धीरे कलाकार भी समझदार हुए हैं और कलाकारों ने अपना हक मांगना शुरू किया है। कुछ साथियों ने बताया कि हमने एक गाना बनाया, जिस पर अस्सी हजार रूपये लागत आई। जब हम कम्पनी को देने गए, तो कम्पनी ने हमें दस हजार रूपये ही दिए और कहा गाना चला तो दस हजार बाद में मिल जाएंगें। ऐसा बहुत समय तक चलता रहा। आज अच्छा माहौल बन रहा है। आने वाले दिनों में भी काफी कुछ बदलाव होने जा रहे है।

दीपक राविश

सिनेमा कोई सस्ता माध्यम नहीं है जैसे कि उपन्यास की तरह से, कविताएँ लिखने की तरह से। इसके लिए पैसा महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। 1983 में चंद्रावल फिल्म बनी वह बड़ी कमर्शियल फिल्म थी। मेरा ऐसा मानना है कि जो चंद्रावल फिल्म हरियाणवी सिनेमा के लिए यह एक मील का पत्थर साबित हो सकती थी। उसके बाद जो भी फिल्में बनीं उनमें इतनी गंभीरता

नहीं थी। यदि इन फिल्मों को गौर से देखा जाए तो उसमें दर्शकों का ज्यादा दोष नहीं था, उसमें अगंभीरता देखने को मिलती है। उसके बाद हरियाणवी फिल्मों को लेकर दर्शकों का मोहभंग हुआ। जबकि उन फिल्मों में संगीत बड़ा मजबूत रहा। पिछले कुछ समय में अच्छी फिल्में बनी हैं जिनमें सतरंगी, पगड़ी, खाप आदि। जिसके कारण दर्शकों का हरियाणवी भाषा और हरियाणवी सिनेमा की तरफ रुझान बढ़ा है।

पहले हमें यह देखना होगा कि हरियाणवी फिल्मों का बाजार कितना है और फिर उस बजट की फिल्में बनें। मुख्य चीज यह है कि फिल्म माध्यम सरवाईव तब करेगा जब उसमें निरंतर पैसा आएगा। पैसा तभी आएगा जब नयी तकनीक से सस्ती फिल्म बनाई जाए। वह सस्ती फिल्में दर्शकों को सिनेमाघर में खीच लाने में कामयाब होती हैं। सरकारी प्रयासों का एक सीमित महत्व है। यह अच्छी बात है हरियाणवी फिल्म पॉलिसी अभी बनी है। जो सजृनकर्मी हैं उनके प्रयासों से इसका एक स्वरूप बना है।

इकबाल

आज हरियाणवी पॉपुलर गाने केवल मनोरंजन का साधन भर नहीं रहे हैं। बल्कि इन पॉपुलर गीतों में हरियाणवी समाज एवं भाषा का जो रूप उभरकर हमारे सामने आया है, उसमें हरियाणवी समाज की मानसिकता, सांस्कृतिक बहुलता, संघर्ष के साथ-साथ हमें यह भी पता चलता है कि हरियाणवी युवा वर्ग किस ओर जा रहा है। आज यह पॉपुलर गीत ग्रामीण युवाओं के साथ-साथ शहरी युवाओं की भी जुबान पर चढ़े हुए हैं। जिनमें पुरानी पीढ़ी और नयी पीढ़ी के बीच में अंतराल, संवादधर्मिता और टकराव को देखा जा सकता है।

अक्सर देखने में आता है कि हरियाणवी पॉपुलर गानों को लेकर समाज में दो तरह के दृष्टिकोण देखने को मिलते हैं। एक दृष्टिकोण इनको केवल मनोरंजन का साधन मानकर चलता है। वहीं दूसरा दृष्टिकोण में देखने में आता है, हमारा बुद्धिजीवी वर्ग इन हरियाणवी पॉपुलर गीतों को असभ्य, सतही और असांस्कृतिक मानकर इन्हें खारिज कर देता है। इन पर अश्लीलता का आरोप लगाया जाता है, साथ ही इनकी भाषा और विषय-वस्तु को लेकर सवाल किये जाते हैं।

हमें भूलना नहीं चाहिए कि बहुत से लोकगीतों व रागनियों में भी इस तरह की अश्लीलता देखने को मिलती है। जब एक बार आज के बेहद लोकप्रिय पॉप गायक हनी सिंह से उनके गीतों में अश्लीलता से संबंधित सवाल पूछा गया तो वे बड़ी बेबाकी से हमारे लोकगीतों का हवाला देते हुए कहते हैं कि यह सब तो पहले से हमारी लोक-संस्कृति में विद्यमान रहा है। उन्होंने तो सिर्फ उसको आज के संदर्भों में नये तरीके से सामने रखा है।

मनोरंजन की जमीन पैदा कर रहे पॉपुलर हरियाणवी गीतों में हरियाणवी लोक की सांस्कृतिक बहुलता के साथ-साथ विभिन्न मुद्दे, संघर्ष, समस्याएँ, एवं धारणाओं को देखा जा सकता है। साथ ही इन गीतों में हरियाणवी समाज की मानसिकता को भी देखा जा सकता है। एक-दो गानों को उदाहरण के तौर पर लें तो एक गीत आया था- देख क फिंटिग तेरे सूट-सलवार की/ लाग्गती रै बैरण कौन्या बहू जमीदार की - इस हरियाणवी पॉपुलर गाने में जहाँ एक तरफ पति-पत्नी के मधुर प्रेम-संबंधों को दिखाया गया है। वहीं दूसरी तरफ पितृसत्तात्मक मानसिकता भी दिखाई देती है। जो उस किसान की पत्नी को फिटिंग वाले सूट-सलवार पहनने पर नसीहत देता नजर आता है कि तुम्हारा पहनावा देखकर तुम कहीं से भी जमींदार की पत्नी नहीं लगती हो। पितृसत्तात्मकता ने हर वर्ग की स्त्री को लेकर जो छवि गढ़ रखी है। जब भी कोई स्त्री उस छवि को तोड़ने का प्रयास करती है, पितृसत्तात्मक समाज उस को नसीहत देता नजर आता है। अक्सर हमारे हरियाणवी समाज में भी देखा जाता है, कुछ खाप पंचायतें लड़कियों के जींस व मोबाइल रखने पर रोक लगाती रही हैं। पितृसत्तात्मक समाज स्त्री को अपने अधीन रखने के लिए समय-समय पर ऊट-पटांग फतवे जारी करता रहता है।

आज के आधुनिक युग में जाति की खाई खत्म होनी चाहिए थी। लेकिन आज यह खाई और गहरी हो गई है। इसे गहरी करने में इन गीतों ने भी अहम् भूमिका अदा की है। पिछले कुछ समय में जातियों को लेकर अनेक गीत हमारे सामने आए हैं। चाहे वह जाट्टां का छोरा हो, चाहे गुज्जर का छोरा, या चमारां का छोरा आदि। साथ ही कुछ अच्छे गाने भी आया है जैसे - किसान गीत इस गाने में किसान की समस्याओं उठाया गया है।

मोनिका भारद्वाज

जिंदगी को समझने-समझाने, देखने- दिखाने के लिए दो चीजें है। फिल्म और साहित्य। जिस देश ने जितनी अच्छी एवं मिनिंगफुल फिल्म और साहित्य रचा होगा। वह देश उतना ही अधिक प्रगतिशील होगा। मैंने वन मैन एक्टर फिल्में तो बहुत देखी हैं पर वन फिल्म सिनेमा नहीं देखा था। जो हमारा हरियाणा सिनेमा है। जिसमें चंद्रावल फिल्म के बाद कोई फिल्म दर्शकों को लुभा नहीं पाई। अब बीस-पच्चीस सालों के बाद जाकर कुछ अच्छी फिल्में आई है। जैसे - पगड़ी, सतरंगी, खाप आदि। लेकिन इन फिल्मों की भी धड़ा-धड़ टिकटें बिक रही हों, शो हाऊफुल जा रहे हों, ऐसी कोई बात नहीं देखने को मिलती है।

फिल्मों में आज का हरियाणा कहीं नजर नहीं जाता है। इन फिल्मों में वही पहले वाला हरियाणा है जो हुक्का-चिलम, धोती-कुर्ता, घाघरा व दामण तक सिमट कर रह जाता है। इन हरियाणवी फिल्मों में आज के हरियाणवी समाज की छवि उस रूप में नहीं उभर पाई है। जिस रूप में उसे उभरना चाहिए था। आज हरियाणा ने शिक्षा के क्षेत्र में, कृषि के क्षेत्र में और खेलों के क्षेत्र में जो नये मुकाम हासिल किए हैं। उसकी छवि इन फिल्मों में नहीं दिखाई देती।

पिछले समय में अनेक ऐसी फिल्में आई है जिन्होंने हरियाणा को एक अलग पहचान दी है। जिसमें जाट-जाटनी, छोरा जाट का, हरफूल जाट आदि इस तरह की फिल्में बनी है। जिन्होंने हरियाणा की और जाट समाज की एक दबंग छवि को प्रस्तुत किया है। हरियाणा में जाट एक डोमिनेंट कास्ट है, परंतु उसे शौर्य के बजाए उसकी एक अलग ही छवि बन गई है। आज उस छवि को तोड़ने की जरूरत है। साथ ही अच्छे विषय वस्तु को लेकर फिल्में बनाने की जरूरत है ताकि दर्शकों को फिर से जोड़ा जा सके।

विक्रम राही

जब भी हम हरियाणा से बाहर जाते थे तो हमें एक बात सुनने को मिलती थी कि हरियाणा में कल्चर के नाम पर एग्रीकल्चर है। बहुत से लोग इस चीज को नकारात्मक समझते थे लेकिन मैं इसे खूबसूरती मानता हूँ। क्योंकि हरियाणा का जन किसानी से गहरे रूप से जुड़ा हुआ हैं। और हरियाणा के फॉक की हम जब बात-चीत करते है तो चाहे वह लोकगीत हो, चाहे वह लोक वाद्य ही हो वह ऋतुओं और खेत-खलिहान से जुड़े होते हैं। जैसे हम लोकवाद्यों की बात करते हैं जैसे- हरियाणवी में बाँसळी और हिंदी में बाँसुरी कहते है। उसमें कोई तकनीक नहीं होती। उसमें चार-पाँच छिद्र होते हैं। जिन से स्वर निकलते हैं। उसी तरह घड़वा या मटका। जिसमें एक टायर की ट्यूब होती है।

दो धाराएं है एक सांग की धारा और दूसरी गुलाब सिंह की परंपरा है। कैसेट का दौर था सांगी गुलाब सिंह हरियाणावी लोक गायक थे परंतु वह उत्तर प्रदेश के रहने वाले थे। उसके बाद से हम रागनी को हरियाणा की लोक संगीत-परम्परा का ट्रेडमार्क मानते हैं। आज रागनी का जो स्वरूप लोगों के सामने है वह असलीयत में रागनी नहीं है। यदि आपने पुराने सांगों की रागनी सुनी हों तो वह आपकों सूफी परंपरा के नजदीक मिलेगी। धीरे-धीरे जो सांग की विधा थी जो इस तरह की गायिकी की धारा थी धीरे-धीरे वह खत्म होती चली गई। पिछले एक-डेढ़ दशक में बहुत अधिक माट्टी-पलीद हुई है और ऐसे-ऐसे बेसुरे जिनमें ढंग के शब्द नहीं है।

पंजाब और हरियाणा में मैं यह अंतर पाता हूँ हरियाणा में जहां ऑडियन्स चमकीला की है, ऑडियन्स साबरकोटी की भी है, ऑडियन्स सरदूल सिकंदर की भी है जेजी बी की भी है, ऑडियन्स हनी सिंह की भी है। लेकिन हरियाणा में पिछले कुछ समय में वह अच्छे तरीके से नहीं हुआ। जो यूथ फेस्टवल से अच्छे गाने वाले युवा निकलते हैं। आज उनको अवसर नहीं मिलते। उनमें बहुत अच्छे-अच्छे कलाकार भी होते हैं। लेकिन पैसे और अच्छे मार्गदर्शक की कमी के कारण उनकी गायकी उनके अन्दर ही मर जाती है।

पॉप की तरफ जब हम आए, इसमें में गिट-पिट एलबम को इसका श्रेय जाता है। गिट-पिट को दर्शकों का भी अच्छा रिसपोन्स मिला है। पिछले कुछ समय में हरियाणा पॉप में अच्छे गायकों की बहुत कमी थी। अब हरियाणी पॉप में कुछ अच्छे गायक आते हैं। राजू पंजाबी, राजमवार जैसे गायकों ने बहुत अच्छा काम किया है और हरियाणवी पॉप गीतों को एक नई पहचान दिलाई है। लेकिन वहीं दूसरी तरफ अब भी कुछ ऐसे गायक है जो हरियाणवी संस्कृति और हरियाणवी पॉप गीतों के नाम पर फूहड़ता परोस कर हरियाणवी लोक गायकी को बदनाम कर रहे हैं। इस तरह के गायकों ने अपने छोटे-छोटे स्टूडियो खोलकर कर धड़ाधड़ ऐसे गीत निकालकर हरियाणा की माट्टी पलीद कर रहे हैं। आज अच्छे हरियाणवी पॉप गीत केवल हरियाणा ही नहीं बल्कि हरियाणा से बाहर राजस्थान, दिल्ली, उत्तर प्रदेश इत्यादि राज्यों में भी अभी खूब सुनने को मिलते हैं। जो हरियाणवी पॉप गायकी के लिए सुखद अनुभव महसूस होता है।

कमलेश भारतीय

मैं जहाँ भी रहा चाहे चण्डीगढ़ हो, चाहे पंजाब का मोहाली हो, चाहे हिसार हो। हमेशा कलाकारों के साथ रहा। आज 'नभछोर' नाम का दैनिक अखबार में 'सांझी' नाम का कॉलम कलाकारों के लिए निकालता रहा हूँ। आज लगभग सभी हरियाणा के प्रमुख कलाकारों को उस कॉलम के माध्यम से जनता में परिचित करवाया जा चुका है। इस कॉलम के माध्यम से सभी कलाकारों से हरियाणवी समाज और संस्कृति को लेकर तरह-तरह के सवाल करता हूँ। उनको इस तरह की समस्याओं का सामना करना पड़ता और आगे उनके सामने क्या चुनौतियाँ इन विषयों पर खुलकर बात कर यह जानने की मेरी कोशिश रही है।

जब मैं नया-नया हरियाणा में आया तो मैंने देखा कि यशपाल शर्मा का दैनिक जागरण में इंटरव्यू छपा था परंतु वह

इंटरव्यू मुंबई से छापा था। मैं यह सोचकर हैरान था कि हरियाणा के कलाकार का इंटरव्यू मुंबई से छपा है। क्या हरियाणा के पत्रकार मर गए थे? जब से मैंने प्रण कर लिया कि हरियाणा को कोई भी कलाकार सबसे पहले हरियाणा के अखबार में छपेगा। पत्रकार का कार्य केवल राजनीति और दुर्घटनाओं की खबरों तक ही सीमित नहीं होता है। बल्कि कलाकारों और कला को बढ़ावा देना भी होता है। साथ ही जनता को अच्छे कलाकारों से परिचित करवाना भी होता है।

मैं हरियाणा के कलाकारों से हरियाणवी फिल्मों के बारे में पूछता हूँ हरियाणवी फिल्म क्यों नहीं चलती है। आज क्या कारण है अमीर खान एवं सलमान खान ने 'दंगल' और 'सुल्तान' फिल्में बनाकर हरियाणा की नब्ज पड़कर खूब पैसा कमाया है। लेकिन हरियाणवी कलाकार ऐसा नहीं कर पा रहे हैं। आज इस विषय पर गंभीरता से सोचने की जरूरत है।

हरविन्द्र मलिक

आज का विषय है हरियाणवी का मनोरंजन व्यवसाय। मैं एक टीवी चैनल चलाता हूँ, वह भी इस व्यवसाय का ही हिस्सा है। एक भाई ने कहा की हरियाणा का कलाकार मुबंई से आकर कोई हरियाणा के लिए काम नहीं करता। कलाकार केवल अभिनेता नहीं होता। कलाकार वह भी होते है जो पर्दे के पीछे, कैमरे के पीछे काम करते हैं। 1998 में गिट-पिट एलबम के द्वारा हरियाणा में गानों का बीज बोया था। जो आज वृक्ष बन चुका है जिससे आज हमें फल मिलने लग गए हैं। हमारा टीवी चैनल शुरू करने का मकसद यही था कोई तो ऐसा चैनल होना चाहिए जो अपनी भाषा, अपनी बोली और अपनी संस्कृति से जुड़े। आज हम अपने इस मकसद में कितना कामयाब हुए हैं, यह तो आप लोग ही बता सकते हो।

हर समय में अच्छाई-बुराई रही है। हमें बुरी चीजों पर ध्यान नहीं देना चाहिए। क्योंकि पण्डित लख्मी चंद पर इस तरह के आरोप लगते रहे हैं। मैंने 'लाडो' फिल्म में 'पाणी आली' रागनी बनाई थी। उसमें एक अन्तरा है

'पंदरा-सोला बीस बरस की,होरी तेरी उमर रंग छाटण की
कै लयाई, कै ले जागी, बाण छोड़ दे नाटण की
तेरी एक चीज दिल ढाटण की, तू ला कै मोल खड़ी होगी
कै कुएं का नीर सपड़ग्या तू अनबोल खड़ी होगी।

यदि इस रागनी का विश्लेषण करें तो इसका अर्थ भी दूसरा निकलता है। पर यह रागनी भी खूब चली है। अत: समाज में हमेशा ही अच्छा-बुरा मौजूद रहा है और रहेगा भी। इसलिए हमें इसके ज्यादा चक्कर में नहीं पड़ना चाहिए। इस समय हम जो बुराई देख रहे है वह हर युग में मौजूद रही है। जहाँ राम था वहां रावण भी था जहां सीता थी, वहीं सर्पूणखा भी थी। इसलिए इन चीजों से हमें नकारात्मक नहीं होना, बल्कि इनमें से सकारात्मक तालाश करनी है। जैसे कि मेरे यार सुदामा रै/ भई घणे दिना म्हं आया। इस भजन को स्कूल की लड़कियाँ गा रही हैं। इस से अच्छी बात क्या हो सकती है? हमें और समाज को आगे बढ़ाना है।

मनोरंजन हरियाणा का व्यवसाय बन सकता है। लेकिन उससे पहले हमें अपनी चीजों के गर्व से जुड़ना होगा और हरियाणवी बोली और संस्कृति के प्रति जो हीन भावना है, उसे छोड़ना होगा। तभी हम ऐसा कर सकते हैं।

सन्1857 ई. की क्रान्ति में हरियाणा के लोगों ने बहुत बढ़-चढ़ कर भाग लिया था। अंग्रेजों ने हरियाणा से बदला लेने के

लिए हरियाणा को कई टुकड़ों में बांट दिया एक भाग को पंजाब के साथ जोड़ दिया गया। एक भाग को राजस्थान के साथ जोड़ दिया और बाकी को उन्होंने दिल्ली के साथ जोड़ लिया। हमें सांस्कृतिक रूप से मारने की शुरुआत 1857 से हो गई थी। जो सरकारी कर्मचारी तबका था उसने हरियाणा के लोगों का शोषण व नकारना शुरु कर दिया। उसी सोच के कारण यह कहा है कि हरियाणा में कल्चर नहीं, एग्रीकल्चर है।

हरियाणा और हरियाणवी बोली का जो एरिया है। वह केवल पंजाब से 1966 में अलग हुआ हरियाणा नहीं है। बल्कि जहां पर हरियाणवी बोली और समझी जाती है वह सभी हरियाणा ही है जैसे पश्चिमी उत्तर प्रदेश का भाग, दिल्ली का देहात, हरियाणा से लगता राजस्थान वह सब जहां तन्ने-मन्ने की बोली बोली जाती है। यह सब एक बहुत बड़ा क्षेत्र है। हम अपने लहजे और टोन को लेकर शर्म महसूस ना करें।

अंत में यह भी कंहूगा यदि कोई भी साथी हरियाणा और हरियाणवी सस्कृति से जुड़ी कोई भी कविता, रागणी, नाटक, फिल्म या लिख रहा है, सभी का स्वागत है हमारे 'एण्डी'टीवी चैनल पर।

सुमेल सिंह सिद्धू

जब हम मनोरंजन व्यवसाय की बात करते है तो हम एक माध्यम की बात कर रहे होते हैं। उस माध्यम की गजब की जो ताकत है उसके सामने कोई छोटे स्केल का काम दबने कैसे लगता है। जब हम बड़े माध्यम की तरफ देखना शुरु करते हैं अपने सामने छोटे घेरे की बातचीत होती है। कहीं-न-कहीं हम उसी स्केल पर हम थोंपना भी चाह रहे हैं। हम माध्यम की पेचीदगी को बिना समझे, हम सरलता से चाहते है कि हम यूँ- यूँ क्यों नहीं करते। एक तो उस माध्यम की अपनी एक व्याकरण होती है।

दूसरे इसको एक खास टेस्ट के लिए नहीं बनाया गया है। तब हम लोग ड्रामा करते है। हम और रास्ते ढूढ़ते हैं। यदि इसको इस लिहाज पर एक बड़े स्केल पर करना पड़े। भले टी.वी.है। भले वीड़ियो गेम से है। हम लोगों का यह बन चुका है थोड़ा उसको टोप-डाऊन करने की जरूरत महसूस रखे। हम उसको समझाने लगते हैं। इसके बाद हमें लोग सुनने में शायद थोड़ा गैप रह जा रहा है कि वह भी कुछ कहना चाह रहे हैं। वह भी किसी लड़ाई में तो है पर उनकी लड़ाई उस स्केल के अन्दर उसे निभा जाने की है।

मान लीजिए आप ने खर्चा कर लिया दो करोड़ लग गया है। सारी चीजों के बावजूद भी आपको उसमें से पचास लाख मिले। आगे दस साल के लिए भी यह संदेश चला गया कि इस काम में घाटा है। इस काम को बन्द करो। या किसी और ढ़ंग से करो, या छोड़ दो। फिर हम कहते है कि हमारा उद्योग नहीं है। हमारी पहचान नहीं बन रही। हमारी साथ यह दिक्कते हैं। हमारें पास फिल्म होनी चाहिए, लेकिन जब होती है हम कहते हैं कि यह हमारे लायक नहीं है कहीं-ना-कहीं पर, एक तो यह पंजाब में भी बहुत है। उसकी एक वजह है। मुझे लगता है कि एक किस्म का राजनैतिक कारण है। लोग लगे भी हुए है, लेकिन सारी समझदारी और ग्लोबलाईजेशन के बावजूद बात बन नहीं पा रही है।

आप यह समझें कि हिन्दी सिनेमा में अच्छी फिल्म बनती थी वह इप्टा का दौर भी था। बलराज साहनी साहब इप्टा के बड़े कारकून थे। पृथ्वी राजकपूर, साहिर लुधियानवी, कैफी आजमी, सरदार जाफरी साहब बहुत सारे लोग हैं किस-किस के नाम लूँ। चेतन आनन्द जैसे और इस किस्म के बहुत से ओर लोग रहे हैं। जिन्होंने बहुत ही संजीदगी से काम किया। अब उस तरह की बात नहीं रही है। जो पहले एक बड़ी ताकत रही है। अब उसका वजन टी.वी., म्यूजिक विडियो पर डाल दिया गया है। अब उस तरह की फिल्म नहीं बन रही और न ही उस तरह के गीत आ रहे हैं। ऐसी फिल्में शुरु हो गई। दस-दस लाख में फिल्में बनने लगी। आज इतने में तो लोगों की शादी हो रही हैं। इस बारे में आज हमें सोचने की जरूरत है।

मुझे कहा गया कि आपको थोड़ा पंजाबियत से हटकर बात करनी है, जो मुझे बहुत अच्छी लगी। मैं यह जो कह रहा हूँ कि जो पंजाबियत की बात चली। वह तो चली ही नहीं। पंजाबी को सिखों और किसानों की जुबान शुरु से माना गया। इस क्षेत्र की सांझी बात-चीत थी। हीर-रांझा, सोहनी महिवाल, मिर्जा साहिबा की रही है। मेरा ख्याल से यह इस क्षेत्र में भी बहुत गाया जाता था। सांझा क्या था वो। सांझा हमारा फॉक था। सांझी हमारी रागनी थी। जो सूफी म्यूजिक के साथ जाकर मिलती थी। हमारी सांग संस्कृति थी। रामलीला थी। जिसका हर गांव इन्तजार करता था। हीर-रांझा की बात, मिर्जा-साहिबा की बात, गुरु की वाणी की बात इसी के साथ मिलती-जुलती कहानी रोमांटिक कहानियाँ हर जगह मिलती है। इस हिस्से में भी गाई जाती होगी। मैं यह इसलिए कह रहा हूँ उसके कुछ स्रोत हैं। उनको गाने वाले, उनको आगे ले जानने वाले जिनको हम कल्चरल केरियर कह सकते है। इनकी भी बड़ी एक जबरदस्त परम्परा है। मेरे ख्याल से सूफी और वैष्णवों की परंपरा, संतों की निर्गुण परंपरा।

तीसरी मैं कहूगाँ अभी मैं जलियांवाले बाग से होकर आया हूँ। क्रांतिकारी परंपरा रही। आज उस परंपरा से हम धीरे-धीरे दूर

होते जा रहे हैं। और साथ-साथ हम अपनी संस्कृति से कटते चले गए। आज हमे उस परंपरा को पुन: शुरु करना होगा। यह परंपरा हमेशा रहनी चाहिए।

मुझे नहीं पता उसको क्या कहें लेकिन विशेष है यदि कही भी रोमांस शब्द सुनाई दे जाए तो मुझे लगता है कि मैं पंजाब में ही हूं। यह हरियाणा में हमसे ज्यादा बोला जा रहा है। अब लोग पाणी नहीं बोल पा रहे। सुळखण नहीं कह पा रहे। मेरे भाई का नाम रमणीक सिंह है। वह पंजाबी आज पंजाबी या हरियाणवी है। इस पर बहस हो रही है और होनी भी चाहिए। यह देख अच्छा लगता है।

आज जहां मैं रहता हूँ मुझे नहीं लगता कि उसमें कोई पंजाब नाम की चीज भी बची हुई है। भारत सत्तर साल में सिर के बल खड़ा होना सीख रहा है। पंजाब तो खड़ा हो चुका है। उससे आप लोगों को यही सीखना चाहिए कि कैसे ना किया जाए। कैसे होना है यह बात पंजाब ने पिछले 40-45 साल में सीख ली है कुछ एथीक्स उसकी नैतिकता। उसकी सारी चीजें ठीक नहीं थी। लेकिन इसमें कुछ बात ऐसी थी जिसमें 1947 के बंटवारे के चक्कर में हमारे ऊपर लाद दी गई थी। फिर उसी तरह 1966 का जो बंटवारा है वह 1947 वाले की ही निरंतरता है। भाषा के नाम पर कहें तो मुझे नहीं लगता कि भाषा को लेकर हमारी कोई परेशानी रही हो।

शिक्षा में तीन भाषा फार्मूला था उसमें कुछ सम्भावनाएं थी। आपस में एक-दूसरे से जुड़े रहने की। यदि बंटवारे की जगह हरियाणा के पिछड़ेपन पर काम किया जाता। एक सांझी लड़ाई लड़ी जाती, तो बंटवारे की समस्या नहीं आती। पंजाब ने सन् 1966 के बाद 1984 वाला भी एक किस्म का बंटवारा भी झेलना पड़ा है। आज हम एक परिवार के लोगों में छोटी-छोटी समस्याओं को लेकर बंटवारे हो रहे है। आज हम में असहमति को स्वीकार करना नहीं चाह रहे है। जिससे यह समस्या आने वाले समय में अधिक विकराल रूप धारण करने वाली है।

मेरा कहना है पंजाब के अन्दर गंभीर म्यूजिक की परंपरा है। गुरुनानक जी ने भारतीय संगीत परंपरा को बड़ा समृद्ध किया है। वह जहाँ भी गये, वहां के लोगों से उनके राग में बातचीत की। मेरा मतलब है कि एक गहरे रूप से एक सांस्कृतिक आंदोलन खड़ा किया जा रहा था।

आज मैं यह जानना चाहता था कि जो हरियाणवी म्यूजिक है उसके क्या तत्व हैं। जिस तरह हर भाषा के अपने कुछ विशेष तत्व होते हैं। जिससे वह अपनी एक अलग पहचान बनाती है। आज हमें यह पहचाने की जरूरत है हरियाणवी के वह क्या एलीमेंट है जिससे वह दूसरे लोगों को अपनी तरफ आकर्षित कर सकें। आज पंजाब के अन्दर एक भी आदमी नहीं मिलेगा। जो शाह हुसैन को, बुल्ले शाह को, बाबा फरीद को, वारिश शाह को, महम्मुद शाह को गाता हो। आज उस पाठ को समझने का दृष्टिकोण भी नहीं बचा है। आज बड़ी आध्यात्मिक बात होती है। जिसमें तीन तरह की बात देखने को मिलती है। एक तो उसमें जागीरदारी होगी, दूसरा सामंतवादी होगा तीसरा उसमें ईश्वर आ गया। हम वैज्ञानिक तरीके से सोचने वाले लोग हैं। हमें इस बारे में सोचने की फुर्सत ही नहीं है।

आज पंजाबी दुनिया की तेरहवीं सबसे बड़ी जुबान है। पाकिस्तान में भी लोग खूब पंजाबी बोलते हैं। यह अन्य देशों में बसे पंजाब के लोगों के द्वारा भी खूब बोली जाती है। आज पंजाबी में खूब धड़ाधड़ फिल्में आ रही है। लेकिन इन फिल्मों से पंजाब का जो कल्चर है वह गायब है। आज पंजाबी का जो असली कल्चर बचा हुआ है तो पाकिस्तान में बचा हुआ है। आज भी वहां के संगीत में सूफीपन देखने को मिलता है। आज वहाँ का संगीत परंपरा और राजनीति के प्रति लोगों में समझ पैदा करने का एक महत्वपूर्ण जरिया बना हुआ है। फिर भी हमें निराश होने की जरूरत नहीं है, बल्कि जो अच्छी चीजें पीछे छूट रही है। उसे फिर से एक बार जुड़ने की जरूरत है।

कल्चर ओर कुछ नहीं करता हमारे चीजें के देखने की दृष्टिकोण में बदलाव करता है। आज हमारे ऊपर बंदिशे भी हैं, एक स्वतंत्रता भी नहीं बन पा रही है। आज उसकी अपनी स्वायतत्ता जरूरी है। उसका माध्यम भी जरूरी है। व्यवसाय करना भी जरूरी है। उसे व्यवसाय को चलाते भी रहना है। आज कला की स्वायतत्ता के लिए लड़ाई लड़नी जरूरी है। बाबा फरीद कहते है -'बंद ना सक्यों बेला'। ना जाने वह बंधन की बेला कब आएँगी।

आज बहस की संस्कृति को खत्म किया जा रहा है। बिना बहस के हम समाज को कहां लेकर जाएगें। यह आज सोचने की जरूरत है। अंत में मैं एक बात कह कर खत्म करूगाँ। हमारी साँझी संस्कृति की परंपरा सूफियों से आती है। निर्गुण संतों से आती है। बाबा फरीद से, वैष्णों से आती है। जिसने समाज को जोड़ने का काम किया था। आज उस परंपरा की हमारे समाज को बहुत जरूरत है। समाज में एक स्वस्थ बहस की परंपरा का होना बहुत जरूरी है। बहस के बिना हमारा समाज निरंकुश समाज बन जाएगा। एक अच्छी बहस समाज के नवनिर्माण का मार्ग निकालती है।

□□

अपने हीरो से संवाद

□संवाद - यशपाल शर्मा □प्रस्तुति—विकास साल्याण

तीसरे हरियाणा सृजन उत्सव के दौरान 10 फरवरी 2019 को अपने हीरो से संवाद सत्र में बॉलीवुड़ के प्रसिद्ध अभिनेता व रंगकर्मी यशपाल शर्मा ने अपने पंसदीदा तीन नाटकों के अनुभवों को दर्शकों से साझा किया। अपनी रंग-यात्रा के संघर्ष को जिस तरह से बताया वह उपस्थित दर्शकों और कलाकारों के लिए बेहद प्रेरणादायी व ज्ञानवर्धक था। प्रस्तुत है विकास साल्याण की रिपोर्ट - सं.

यशपाल शर्मा - मेरे पंसदीदा नाटक तो ऐसे हैं जैसे मेरे पचास बच्चे हैं और उनमें से कौन-सा बच्चा खराब है और कौन सा ठीक ये बताना तो मेरे लिए बड़ा मुश्किल है। लेकिन जो भी नाटक मैंने किया, वो मैंने ये समझ के किया कि वो मेरा पहला नाटक है, ये मेरे लिए नया है। तो एक पात्र के तौर पर मैंने कोशिश की है। जिन्होंने मेरे नाटक देखे हैं तो वो बड़े बेहतर तरीके से जानते हैं। मेरे पंसदीदा नाटक में शोफोक्लीज, युरीपीडिज, मोलियर, शेक्सपीयर, मोहन राकेश, बादल सरकार, असगर वजाहत आदि के काफी नाटक किये हैं। 'तुगलक' मेरे सबसे पसंदीदा नाटकों में से एक है जो गिरीश कर्नाड जी का लिखा हुआ है और बी.बी. कारंत मेरे गुरू थे उन्होंने उसका उर्दू में अनुवाद किया है। नाटक बहुत किए हैं लेकिन ऐसी भाषा बहुत कम देखने को और पढ़ने को मिली है।

तुगलक नाटक हमने फिरोज शाह तुगलक के किले में दिल्ली में है वहाँ उसे रिनोवेट करके किया था और उसका चार करोड़ का बजट था, इतने बजट में चार-पाँच हरियाणवी फ़िल्मे बन जाती हैं। मेरे लिए तुगलक नाटक करना इतना बड़ा अनुभव था कि मैं इसे जिंदगी भर नहीं भूल सकता। इस नाटक का बीज जहाँ से शुरू हुआ वो है भानु भारती जी का कॉल आया था, उन्होंने मुझे नाटक करने के लिए कहा। उससे एक साल पहले भानु भारती जी ने मुझे धर्मवीर भारती जी के नाटक अंधायुग में अश्वत्थामा का रोल करने के लिए बोला था, तो मैं घबरा गया था कि अश्वत्थामा का रोल मैं कैसे कर सकता हूँ, मैं ये रोल नहीं कर पाऊंगा। क्योंकि ये इतने लार्जर दैन लाईफ करैक्टर हैं कि डर लगता है इनमें घुसते हुए। शाहरूख खान अशोका का रोल कर सकता है पर मेरे लिए अशोका का रोल करना कोई छोटी बात नहीं है, देवदास का रोल करना कोई छोटी बात नहीं है कि ऐसे ही कर लो चलते-फिरते कि दुनिया जानेगी, इतिहास में नाम लिखा जाएगा। लेकिन इतिहास में नाम लिखना है तो अच्छा लिखो। ये नहीं है कि न तो आप अशोका को कर पाओ, उसकी कहानी भी खराब कर दो। तो अब भानु-भारती जी ने जब मुझे बोला कि तुम्हे 'तुगलक' नाटक में 'तुगलक' का रोल करना है। यह बात सुनते ही कि मैने तुगलक का रोल करना है तो मैंने उनको मना कर दिया। सर, मैं नहीं कर सकता इतना बड़ा रोल, मुझे माफ कर दो। तो भानु भारती जी बोले नहीं यशपाल तुम कर सकते हो। मैं तुम्हें जानता हूँ, तुम कर सकते हो और न होगा तो हम बैठे हैं, हम करवाएंगे, बस तुम एक बार हाँ बोल दो। तो मैंने उनसे दो दिन का समय मांगा। तो भानु भारती जी बोले नहीं दो दिन का नहीं एक दिन
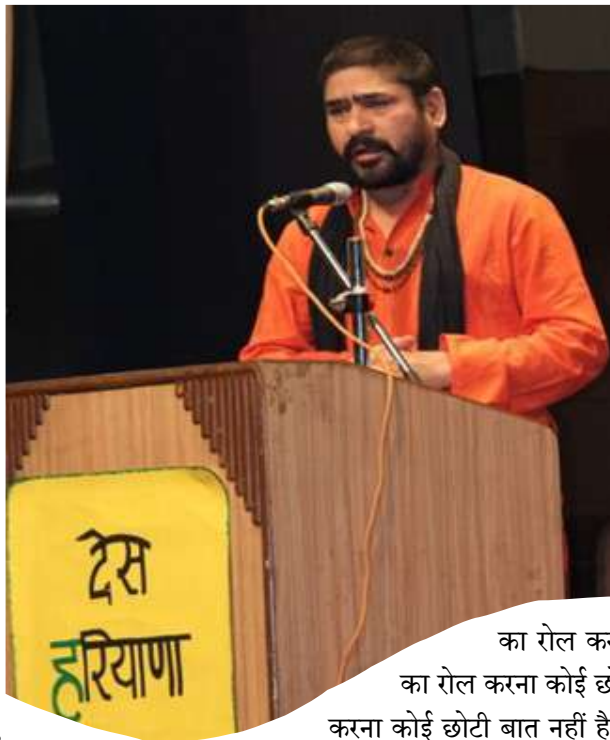
का टाईम है और हमें जल्दी बताओ।

उसके बाद मैं सीधा घर गया और अपनी लाईब्रेरी से तुगलक नाटक को ढूंढने लग गया, बहुत देर के बाद रात के एक बजे मुझे 'आज के रंग' नामक पुस्तक थी जिसमें वो नाटक मिल गया और फिर मैंने उसको पढ़ा जैसे ही उसको पढ़ता गया तो तुगलक का करैक्टर मेरे अन्दर घुसता चला गया और मुझे लगने लग गया कि येस आई कैन डू ईट। मैंने वो नाटक पढ़ते ही अगले दिन उनको मैसेज कर दिया कि येस आई कैन डु इट। उनका फोन आया और वो बोले कि बस अब तो मजा आ गया। उसके बाद मैंने कुछ महीने के लिए अपना मोबाईल फोन बंद कर दिया और दुनिया से कुछ दिनों के लिए अलग हो गया क्योंकि ऐसा किरदार करना कोई छोटी-मोटी बात नहीं थी। हालांकि मैंने आइंस्टीन का रोल भी किया है। मोहन महर्षि जी के नाटक में, जिसे संगीत नाटक अकादमी का अवार्ड मिला था। 'बड़े न खेल छोटे खेल' यह इटली के नाटककार डेरियो-फो का अनुदित नाटक है, तो ये तीन नाटक मेरे पसन्दीदा है। उस समय नाटक करते हुए मैंने एक डमी कोस्टयुम ले ली थी। रिहर्सल करने के लिए हम डेढ महीने के लिए दिल्ली में ही आ गए थे। हिमानी शिवपुरी मेरी माँ के रोल में थी, नरवाना से सीताराम पांचाल जो नरवाना से थे, जो अब इस दुनिया में नहीं रहे। कुछ अन्य लोग जितेन्द्र शास्त्री, रवि खानवेलकर और अन्य कुछ एन.एस.डी. के साथी थे।

रिहर्सल के दौरान भाषणों में रातों को चिल्ला-चिल्ला के बोलता था अपने डायलॉग, तो वो मेरे अन्दर तक बस गया था कि मैं भी उस दौरान रातों को सिर्फ एक दो घन्टा ही सो पाता था, मुझे भी नींद आनी बंद हो गई थी। मैं वो डम्मी कोस्टयूम ओढ़कर ही शीशे के सामने रिहर्सल करता था जोर-जोर से बोल नहीं सकते थे, पर मैं यही सोचता था कि वो कैसे चलेगा, वो कैसे बोलेगा। हर समय मैं तुगलक के करेक्टर में डूबा रहता था।

एक दिन हमारे ऑर्गनाईजर बोले, सभी को अपने-अपने कपड़े खुद धोने है, तो मुझे गुस्सा आया अगले दिन क्लास भानु भारती जी बैठे थे तो मैं उनके सामने बोला ये क्या बकवास है? क्या तुगलक अब चड्डियां धोएगा? मैं एक शहंशाह हूँ, अब शहंशाह के इतने बुरे दिन आ गए? तो इन बातों का असर ऐसा पड़ा कि तो सबको बोला गया, कि कोई कपड़े नहीं धोएगा वापिस कपड़े लांडरी में डालो। अभी तुगलक के रिआया हैं, अभी आप किसी ओर सदी के लोग है। अभी ये सब छोड़ दो।

तुगलक नाटक को लेकर मेरा बहुत अच्छा अनुभव रहा, इसके आठ शो हुए थे और शीला दीक्षित जी ने करवाए थे, दिल्ली सरकार की तरफ से। पूरी दिल्ली में बड़े-बड़े बैनर लगे हुए थे। हर बस स्टैंड पर बड़े-बड़े पोस्टर लगे हुए थे। संसद और विधान सभा के लगभग सभी लोगों ने यह नाटक देखा था। प्रतिदिन लगभग तीन हजार आदमी देखते थे। एक सौ बीस फुट माईक थे और ग्यारह स्टेज थे यह एक विशाल नाटक था। कुछ दिनों के लिए एक अलग अहसास था।

एक दिन मेरे एक दोस्त अभिलाष पिल्लै (आजकल वो एन.एस.डी.में पढ़ाते हैं) उसने मुझे बुलाया कि एक बार हम मिलते हैं बहुत दिन हो गए हैं, तो वो मुझे देखकर डर गया और वो बोला- यार तू बहुत विशाल-सा लग रहा है क्या हो गया ? मैंने कहा ऐसा है क्या! फिर तो बहुत बढ़िया है - इसका अर्थ है समथिंग इज हैपनिंग। मेरा मानना यह कि जब भी आपको कोई रोल तैयार करना हो तो आपके शरीर के साथ आपके मानस-पटल पर भी उस करेक्टर का प्रभाव पड़ना चाहिए। शरीर की तरफ ध्यान न देकर तटस्थ होकर, बिना उतार-चढ़ाव के पढ़ना चाहिए, उस करेक्टर को पढ़ना चाहिए, चाहे वो फ़िल्म हो या नाटक हो या कोई रोल हो। पढ़ना चाहिए क्योंकि धीरे-धीरे पढ़ते ही अपने आप ही उतार-चढ़ाव आएंगे और वो फिर धीर-धीरे आपके अन्दर घुसने लग जाएगी वो चीज। नहीं तो क्या होगा हम पहले ही किसी से प्रेरणा लेके एक करैक्टर तैयार कर लेते हैं जोकि एक हमेशा गलत दिशा होती है। इसलिए बिना इमोशन के उसको धीरे-धीरे पढ़ना चाहिए और इसी प्रक्रिया को धीरे-धीरे करते हुए आपको अपने आप समझ में आने लग जाएगा कि नाटक है क्या? तो कोई भी रोल हमें तैयार करना है तो वो अंतर्आत्मा से तैयार करना चाहिए? अगर शरीर से तैयार करोगे तो सिर्फ एक सीन अच्छा कर पाओगे। एक रोल सही नहीं कर पाओगे और उसका स्पष्ट पता लग जाता है फ़िल्म में कि जैसे हम देखते हैं कि नवाजुद्दीन बढ़िया काम कर रहा है, संजय मिश्रा अच्छा काम कर रहा है, विक्की कौशल अच्छा काम कर रहा है। ये रोल अन्दर से निकलता है जैसे वो एक छोटे से नवाजुद्दीन को बाला साहब ठाकरे बना देता है जो एक बहुत विशाल करेक्टर तैयार करवा देती है, जो चार्ली चैप्लिन को हिटलर बना देती है।

चार्ली चैप्लिन मेरे जीवन के मेरे सबसे पसंदीदा एक्टर हैं, चार्ली चैप्लिन जैसा दुनिया में कोई पैदा नहीं हुआ। बहुत बड़ी प्रेरणा है किसी भी कलाकार के लिए क्योंकि एक्टर, डायरेक्टर, राईटर सब कुछ खुद करते थे। हंसाते-हंसाते रूला देना और रूलाते-रूलाते हंसा देना यह कला बहुत कम लोगों में होती है। क्योंकि सीरियस बात को सीरियसली बोलना और रोते-रोते बोलना, ये कोई कला नहीं है, वो कई बार बोरिंग हो जाती है।

जैसे थ्री-इडियट फ़िल्म का उदाहरण ले लेते हैं, उसमें कितनी गम्भीर बात है लेकिन किस मनोरंजक तरीके से बोला गया है तो वह एक बहुत अच्छा स्क्रिप्ट है।

मेरा दूसरा नाटक है जो मेरा पसंदीदा है, वैसे मेरे सभी नाटक बेस्ट हैं अभी तक मैंने लगभग सत्तर से ऊपर नाटक किए हैं और ग्यारह नाटक अभी चल रहे हैं, जिसमें चार नाटक गुलजार साहब के हैं, नादिरा बब्बर का एक नाटक है, रामजी बाली का एक नाटक है, मकरंद देशपांडे का एक नाटक है तो इस प्रकार कई नाटक हैं। पर अभी फिलहाल मैं फिल्म डायरेक्ट कर रहा हूँ तो कुछ समय के लिए मैंने नाटकों से रेस्ट लिया है।

जिस नाटक की अभी मैं चर्चा करने जा रहा हूँ वो है आइंस्टीन नाटक। कुछ नाटक ऐसे होते हैं जिनमें आप इम्प्रोवाईज नहीं कर सकते क्योंकि जैसे गुलजार साहब की जो शब्दावली है, गिरीश कर्नाड की जो शब्दावली है उसमें इंप्रोवाईज नहीं कर सकते, क्योंकि इनकी जो विशेष भाषा है, उस भाषा को हम तैयार नहीं कर सकते। क्योंकि वो भाषा उन्होंने रात -रात भर जाग कर, कई-कई बार उस पर बहुत काम हुआ है, बहुत मेहनत की गई है तो हमें कोई अधिकार नहीं होता कि उसके साथ छेड़छाड़ करें और उसको इंप्रोवाईज करे। लेकिन कुछ नाटक ऐसे होते है जिनको हम इंप्रोवाईज कर सकते हैं जैसे 'बड़े न खेले, छोटे खेल' तीन घंटे का कॉमेडी नाटक है उसको बहुत इंप्रोवाईज किया।

लेकिन आइंस्टाइन और मिर्जा गालिब जैसे नाटकों को इंप्रोवाईज कैसे कर सकते हैं क्योंकि मिर्जा गालिब का लहजा और कुव्वत हम कैसे तैयार कर सकते हैं। जैसे मोहन राकेश का आधे-अधूरे है और आषाढ़ का एक दिन उनमें इंप्रोवाईज नहीं करना चाहिए, बहुत सोचा समझा हुआ निर्देशक से बात करके एक आधी लाईन हम कर पाए तो कोई बात नहीं । नाटक के दौरान हमें गैलरी-कॉमेडी से बचना चाहिए जो हम रिहर्सल के दौरान अपने दोस्तों को हंसाने के लिए करते हैं।

आइंस्टीन एक ऐसा नाटक था, जिसमें उसी समय के कपड़े खरीदे गए जो 1902-04 के आसपास का समय था, वही कोट-पेंट और टाई, आइंस्टीन के जैसे छल्लेदार बालों का स्टाईल बनाया गया। दिल्ली के मैक्समुलर भवन में मैंने आइंस्टाइन की फिल्में देखी उसकी ओरिजनल क्लिप्स देखी और मैं ढाई महीने वहीं पर रहा, क्योंकि उस समय में मोबाइल तो थे ही नहीं। उस वक्त मोहन महर्षि जी आए थे वो तीन अन्य साथियों को बोलकर गए कि आप आइंस्टाइन को तैयार कर लेना। तो मैंने खड़ा हो कर कहा कि सिर्फ ये तीनों ही क्यों करेंगे? मैं भी करूंगा। तो मोहन जी बोले आप आइंस्टीन नहीं लगोंगे। मैंने कहा क्यों नहीं लगूंगा। तो वो बोले कि ठीक है एक सप्ताह है तुम चारों तैयार कर लो। एक सप्ताह मैंने जो पिया था उस नाटक को, और रात-दिन उसकी स्पीच तैयार की। सबसे बड़ी बात होती है कि करने की इच्छा। वो इच्छा बहुत जरूरी है, आपके अन्दर दस कमियां हो तो वो चलेगा। लेकिन आपके अन्दर इच्छा होनी चाहिए वो भी सही दिशा में होनी चाहिए। सात दिन बाद मोहन महर्षि जी आए तो हम सबने रीडिंग की और उसके बाद मुझे ही मिला रोल क्योंकि मैने बहुत मेहनत की थी उसके लिए मैंने वैसे ही बाल कटवा लिए थे, कोट-टाई लगाकर मैं रिहर्सल में आया था और बिल्कुल आइंस्टीन की तरह लग रहा था। वो तीन घंटे का नाटक था, मेरे एक एन.एस.डी. के टीचर रघुनंदन जी मैसूर में पढाते हैं उन्होंने मुझसे कहा कि यशपाल मैं इस नाटक को घंटों तक देख सकता हूँ, दस घंटे तक भी देख सकता हूँ, यह एक बहुत अदभुत नाटक तैयार हुआ है। यह नाटक बहुत प्रेरणादायक था क्योंकि उसमें आइंस्टीन की जीवनी थी कि कैसे आइंस्टाइन, आइंस्टाइन बना। क्योंकि उसमें उसका संघर्ष छिपा था।

आइंस्टाइन का गणित और फिजिक्स कमजोर था और उसके एक दोस्त का गणित बहुत अच्छा था, वह गणित का विद्वान था और वह अपने दोस्त को दारू पीने के बहाने बुलाकर उसके साथ चर्चा करता और जहाँ उसको कमजोरी लगती थी, जिस बिन्दू को वह कमजोर मानता था तो उसको समझता और बाथरूम के बहाने और बर्फ लेने के बहाने आदि-आदि वहाँ से जाता था फटाफट उन बिन्दुओं और सूत्र को लिखकर आता और फिर आकर चर्चा करता था। उसने सात-आठ बार ऐसा किया। उसका ध्यान बिल्कुल चिड़िया की आँख पर था और उसी रात को जो उसकी थ्यौरी है ई ईज इक्वल टु एम सी स्कवेयर पर पहुँचा और यही इस नाटक का क्लाईमैक्स था। आइंस्टाइन अपने बीवी-बच्चों से बहुत दूर रहता था, कॉलेज के समय तो बीवी से बहुत प्यार करता था, पर शादी के बाद उनकी तरफ कभी ध्यान नहीं दिया।

इस नाटक की सबसे बड़ी खास बात, जो सबसे बड़ा तोहफा था मेरे इस नाटक का, वो था कि इस नाटक को इब्राहिम अल्काजी देख रहे थे। प्रस्तुति के बाद वह सीधे मेरे पास आए और मुझे गले लगाकर बोले बहुत दिनों के बाद मैंने ऐसी बेहतरीन प्रस्तुति देखी है और मैं इसे देखकर बहुत खुश हूं। उस दिन यशपाल शर्मा खुशी के कारण सो नहीं पाए, लगातार इमोशन आ रहे थे।

तीसरा मेरा नाटक था 'बड़े न खेले, छोट खेल' (आरकेंजस डोन्ट प्ले पिनबॉल गेम) यह एक कॉमेडी नाटक था। इसमें मेरा लोफ्टी का रोल था जो तीन घंटे लगातार स्टेज पर रहता था और दूसरे अन्य पात्र आते हैं जाते हैं। यह एक एनर्जी से भरा नाटक था। इसका निर्देशन कर रहे थे रोबिनदास जी जोकि एन.एस.डी. के बहुत ही क्रिएटिव डायरेक्टर है। तो इस रोल को मैं कर नहीं पा रहा था क्योंकि वो जो बात है अन्दर से नहीं हो पा रही थी। लेकिन मैं इसे करना चाहता था। तो मैंने रोबिनदास जी से बात की तो उन्होंने मुझसे कहा कि ऐसा करो एन.एस.डी. की साऊंड एंड फिल्म लाईब्रेरी में जाओ और दो फ़िल्में देखकर आओ। जब मैं उन फ़िल्मों को देखकर आया तो बहुत हंसने लग गया उससे पहले मैं कभी हंसता नहीं था क्योंकि मेरे दांत पीले थे और दूसरा मैं यहां हरियाणा के गांव का आदमी था और वहाँ सारे देशभर के आदमी थे तो उसकी वजह से थोड़ा संकुचित था। हम अपने माहौल की वजह से संकुचित हो जाते है पर यह हमें छोड़ देना चाहिए। कुछ लोग इसे छोड़ देते है पर कुछ नहीं छोड़ पाते। मैंने यह दोनों फिल्में देखी और जिम कैरी की परफोरमेंस देखकर हैरान रह गया और उसके बाद मुझे अपना करेक्टर ही विशाल लगने लगा मुझे। फिर एक चीज मैंने की मैं खुलकर हंसने लग गया, चाहे मेरे दांत पीले हों पर मैं खुल के हंसने लग गया। उससे मुक्त हुआ और आगे बढ़ गया। फिर मैंने वो नाटक किया पूरे तीन घंटे ऑडियंस को हंसाया और लास्ट के दस मिनट रूलाया और फिर अंतिम पाँच मिनटों में सबको हंसाया और सबको हंसते-हंसते विदा किया। यह मेरे जीवन की सबसे शानदार परफोर्मेंस थी। यह तीनों मेरे जीवन के सबसे बेहतरीन नाटक थे।

दर्शक - हरियाणा ने बॉलीवुड़ को अनेक अभिनेता दिये हैं। हरियाणा के लिए अभी तक कोई हरियाणवी कलाकार आया नहीं है, आप लख्मीचंद को लेकर जो कोशिश कर रहे हैं तो उसका प्रेरणा स्त्रोत क्या है।

यशपाल शर्मा – मैंने देश के बहुत से रिजनल सिनेमा की तरफ ध्यान दिया जैसे भोजपुरी सिनेमा, मराठी सिनेमा, बांग्ला सिनेमा, कन्नड़ सिनेमा, पंजाब आदि-आदि सभी ने तरक्की की है, पर हरियाणा के सिनेमा में यह बात नहीं मिलती । फिर मैंने सोचा कुछ करते हैं फेल हो जाएंगे फिर यह तो नहीं होगा कि कोशिश नहीं की। फिर कुछ फिल्में बनी है जैसे 'सतरंगी' और 'पगडी' दोनों को नेशनल अवार्ड मिला। कई देशों में सराही गई। अभी लख्मीचंद पर काम चल रहा है, कोशिश है कि हरियाणवी फिल्मों का बैनर मुम्बई में भी लगे, ऑस्ट्रेलिया में भी लगे सब जगह लगे और यह तक चाहता हूँ कि हरियाणवी फ़िल्म ऑस्कर की अंतिम पाँच फ़िल्मों तक जाए।

दर्शक - हरियाणा के एक नाटककार हुए है स्वदेश दीपक। उन्होंने अपने नाटक 'कोर्ट मार्शल' में एक समस्या को उठाया है। क्या आपने भी ऐसी समस्या को लेकर कोई काम किया है?

यशपाल शर्मा – हर एक साहित्यकार, नाटककार और फ़िल्मकार का अपना एक अलग जीवन है, जीवन को लेकर अलग दृष्टिकोण होता है और जीवन की समस्याएं होती हैं तो उन्हीं से उनका अनुभव होता है और उसी से वो अपना लेखन करते हैं। उनके नाटक में समस्या जाति-पाति की थी, वो भी आर्मी में जहाँ पर सब बराबर होते हैं। हमें उनको सैल्युट करना चाहिए और हमें किसी से तुलना नहीं करनी चाहिए । मेरे जीवन के अनुभव और समस्याएं अलग हैं, उनको लेकर मैंने काम किया है।

दर्शक – आप किसी भी रोल को तैयार करने के लिए अभिनय की जो परिपाटियां हैं उनमें से किसके नजदीक पाते हैं। और हिन्दुस्तान में एक्टिंग की कौन-कौन सी प्रचलित प्रणालियां है?

यशपाल शर्मा - दरअसल हर आदमी के हिसाब से अपनी-अपनी अलग परिपाटी है, हर आदमी की अपनी यात्रा होती है, नसीरूद्दीन शाह मैथड एक्टिंग करते थे, अब नहीं करते। इसके लिए कई किताबें हैं, क्रिएटिंग ए रोल है, बिल्डिंग ए करैक्टर, एन एक्टर परिपेरिंग ये तीन किताबें हैं। ग्रोटोवस्की है जो बॉडी एक्टिंग को महत्व देते है। ब्रेख्त की थ्योरी है जिसमें ऑडियंस और करेक्टर की डायरेक्ट बातचीत होती है। तो कई तरीके हैं मेरा जो तरीका है अब वह मेरा ही तरीका है वो किसी ओर किसी का नहीं हो सकता। हर आदमी को अपना तरीका बनाना पड़ता है, दूसरों के तरीकों के साथ आप लम्बे समय तक नहीं चल सकते। लिखे हुए शब्दों को अपना बनाना पड़ता है, उसमें यह नहीं होना चाहिए कि थोपे हुए शब्द हैं, लिखे हुए शब्द हैं। अंदरूनी चीजें दूसरे एक्टरों से लिया है जैसे बलराज साहनी से सच्चाई ली है, अमिताभ से जोश लिया है, सन्नी दयोल से गुस्सा लिया है। अंदरुनी चीजें ली हैं पर बाहरी नहीं ली। ये अनुभव धीरे-धीरे बनता है। पात्र की तरह खाली रहकर धीर-धीरे ग्रहण करना चाहिए। स्क्रिप्ट अपने आप बता देती है। कुछ फोलो करने से पहले स्क्रिप्ट को फोलो करना चाहिए। अपना माईंड उसी तरीके से सेट करना चाहिए।

□□

सृजन की परंपराएं : संघर्ष एवं द्वंद्व

□वक्तव्य - चौथी राम यादव □प्रस्तुति: अरुण कुमार कैहरबा

देस हरियाणा पत्रिका द्वारा कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय कुरुक्षेत्र के आर.के. सदन में 8-9 फरवरी को आयोजित तीसरे हरियाणा सृजन उत्सव का शुभारंभ के अवसर पर बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय के पूर्व प्रोफेसर एवं प्रख्यात आलोचक डॉ. चौथीराम यादव ने 'सृजन की परंपराएं: संघर्ष एवं द्वंद्व' विषय पर वक्तव्य रखा। उद्घाटन सत्र की अध्यक्षता प्रोफेसर टी आर कुंडू ने की और संचालन पत्रिका से जुड़े परमानंद शास्त्री ने किया। यह सत्र शहीद पत्रकार रामचंद्र छत्रपति को समर्पित था। वक्तव्य को लिपिबद्ध करने का कार्य किया है अरुण कैहरबा ने - सं.

सृजन वहां होता है, जहां संघर्ष होता है। सृजन होता ही है संघर्ष में। मुक्तिबोध ने लिखा- विचार आते हैं - लिखते समय नहीं, बोझ उठाते समय पीठ पर। आरामदायक मौसम व एक कमरे में बैठ कर सुविधाभोगी जीवन जी रहे हैं। किसानों के बारे में लिख रहे हैं। मजदूरों के बारे में लिख रहे हैं। सृजन का विकास वहां पर होता है। मनुष्य जब तक संघर्षशील जीवन जी रहा होता है। प्रकृति के संपर्क में होता है। किसान संघर्षशील है। सृजनकर्ता है वह। इसलिए सृजन की परंपराएं बौद्धिक क्षेत्र में और सामाजिक क्षेत्र में हैं।

भारत विभिन्न परंपराओं, सम्प्रदायों और धार्मिक परिस्थितियों का देश है। परंपरा नहीं परंपराएं हैं। एक नहीं अनेक प्रकार की हैं। उनके बीच में परस्पर विरोध व सामंजस्य के बीच हमारे देश का विकास हुआ है। तमाम प्रकार की चिंताएं हैं, विभिन्नताएं हैं। अपनी विभिन्नताओं के होते हुए भी सामंजस्यपूर्ण जीवन जीने के लिए भारत जाना जाता है। सेक्यूलर देश के रूप में भारत की दुनिया भर में पहचान है। विभिन्न सम्प्रदायों, जाति और विचारधाराओं के लोग हैं, लेकिन विरोध के बावजूद उनके बीच में सामंजस्य बना हुआ है।

देश को बांटने वाली ताकतें जब सक्रिय होती हैं। देश को खंड-खंड करती है, तो हमें सृजनधर्मी लोगों की याद आती है, जिन्होंने उसको बचाने के लिए अपनी शहादत दी। मेरा सौभाग्य है कि तीसरे हरियाणा सृजन उत्सव में मैं शामिल हुआ हूँ, जिसको रामचन्द्र छत्रपति जी को समर्पित किया गया है, उनकी यादगार में। हम उनकी विरासत को जी रहे हैं। आज अन्याय को न्याय साबित किया जा रहा है। समाज को जोड़ना, एकजुट करना, मनुष्यता के नाम पर यह यह जरूरी काम है। उस समय जब मनुष्यता को मिलाने की बात की जाती थी, तो दोनों तरफ की बांटने वाली कट्टरपंथी ताकतें भी अपनी कोशिश में लगी थी।

कबीर अपनी कविताओं में सवाल उठाते थे। कबीर की कविता प्रश्न पूछने की कविता है। यह हमारी सृजनधर्मी परंपरा

का विकास करने वाले युगपुरूष हैं, जिनसे हिन्दी कविता की शुरूआत होती है। और आगे चलते हैं तो रैदास, बाबा फरीद, बुल्लेशाह को यह परंपरा कहां से मिली। यह धरती सूफियों की धरती है, यह संतों की धरती रही है। इतने जो विचार आए हैं, वे आगे बढ़ते रहे। देश को आजाद करवाने के लिए लोगों ने शहादतें दी। उन्होंने समझौता नहीं किया। अन्याय के खिलाफ लिखते रहे।

कर्नाटक में मुरुगन जैसे बड़े उपन्यासकार को इतना प्रताड़ित किया गया कि उसने लिखा आज मैं अपने लेखक की मृत्यु की घोषणा करता हूँ। दिल दहला देने वाली बात है। वह जाना-माना अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त लेखक था, जो अपने समाज की चुनौतियों से लड़ता-भिड़ता रहा। उसे मजबूर किया गया कि वह लिखना बंद करे, नहीं तो उसकी हत्या कर दी जाएगी। इतने बड़े लेखक के साथ हम क्या कर रहे हैं। हमारा समाज उसे इतना अवकाश नहीं दे पा रहा है कि वह लिख सके। आगे चलकर न्यायपालिका ने उन्हें कहा कि लिखते रहें। लेखक की मृत्यु की घोषणा करने की कोई जरूरत नहीं है। यानी समाज व न्यायपालिका चाहता था कि वह लिखें।

वह कौन सी ताकतें हैं जो हमारे समाज को बांटती हैं। जो मनुष्यता की बात करते हैं, वे उन्हें मरवाने की बात करती हैं। लेखक होना बड़ी बात है। बड़ा लेखक होना और भी बड़ी बात है। लेकिन बड़े लेखक का बड़ा मनुष्य होना और भी बड़ी बात है। हमारे जो सृजनधर्मी लोग हुए हैं, वे जितने बड़े लेखक थे, उतने ही बड़े मनुष्य थे। यदि बड़े मनुष्य नहीं होते तो वे इतनी बड़ी कुर्बानी देने के लिए तैयार नहीं होते। वे क्यों कर सके ऐसा क्योंकि वे अपने लिए नहीं जीते थे, वे दूसरों के लिए जीते थे और समाज के लिए जीते थे। इसलिए पीढ़ियों के बाद भी उन्हें याद किया जाता है।

परंपरा एक नहीं है। एक परंपरा अन्याय व अत्याचार करने वाली परंपरा है। दूसरा उसका प्रतिरोध करने वाली परंपरा वहां मौजूद रही है। चुनौतियां आज ही हमारे सामने नहीं हैं। निश्चित तौर पर आज हम संकट के दौर से गुजर रहे हैं। असहिष्णुता के दौर से गुजर रहे हैं। चुनौतियों से भरा हमारा समाज है। और उन चुनौतियों को हम झेल रहे हैं। बहुत सारे लोग उन चुनौतियों से भयभीत होकर भाग रहे हैं। कुछ लोग लड़-भिड़ रहे हैं। देश व समाज निर्माण में भूमिका निभा रहे हैं।

जाति-व्यवस्था, साम्प्रदायिकता की परंपरा जितनी पुरानी है, उतनी ही पुरानी उसके विरोध की परंपरा है। जितनी पुरानी पौराणिक परंपरा है, उसके समांतर हमारे श्रमण की परंपरा है, बौद्ध की परंपरा है। आजीविकों की परंपरा है, लोकायतों की परंपरा है। अगर हमारे यहां भाववादी दर्शन व वेदांग की परंपरा है तो सीधे-सीधे वैज्ञानिक दृष्टि संपन्न भौतिक परंपरा भी है। लोकायत व चार्वाकों की परंपरा है। बराबर समाज में जो द्वंद्व होता रहा है। सत्ता व्यवस्था सत्ताधारियों के हाथ में है। उसके विरूद्ध मानवतावादी और भौतिकवादी परंपरा है। जाति-व्यवस्था व वर्ण व्यवस्था पर तीखा प्रहार करने वाला गौतम बुद्ध से बड़ा कोई नहीं हुआ।

जब भीमराव आंबेडकर हिंदू धर्म को छोड़ कर किसी अन्य धर्म को स्वीकार करने की बात आई तो दुनिया की निगाहें उनकी ओर हो गई। अंबेडकर 20वीं सदी का सबसे बड़ा अध्ययनशील व्यक्ति, सबसे बड़ा समाजशास्त्री और सबसे बड़ा अर्थशास्त्री था। स्वतंत्रता आंदोलन के संदर्भ में उनके योगदान को नहीं देखा जाता। डॉ. आंबेडकर इतनी बड़ी हस्ती है, जिन्हें 20वीं सदी में भारत से बाहर नहीं जाने दिया गया। लेकिन डॉ. आंबेडकर जातिवाद और वर्ण व्यवस्था के विरूद्ध जो लड़ाई भारत में लड़ रहे थे, वह लड़ाई बहुत बड़ी थी। मार्टिन लूथर किंग जो लड़ाई अमेरिका में लड़ रहे थे, नेल्सन मंडेला जो लड़ाई दक्षिण अफ्रिका में लड़ रहे थे, नस्लवाद के खिलाफ लड़ रहे थे। अश्वेतों की लड़ाई जो गोरों के साथ थी, वह लड़ाई इतनी कठिन नहीं थी, जितनी आंबेडकर की लड़ाई भारत में थी। क्यों? क्योंकि वहां मामला साफ था। काले लोग गोरों के अन्याय के खिलाफ लड़ रहे थे। नस्लवाद के खिलाफ लड़ रहे थे। लेकिन भारत में जो वर्णवाद के खिलाफ जो लड़ाई है सदियों पुरानी है। जातियों में उपजातियां हैं। उपजातियों में भी उपजातियां हैं। जकड़ा हुआ देश है। जाति भारत की सच्चाई है। जाति को काटने की जो लड़ाई आंबेडकर लड़ रहे थे, वह लड़ाई मार्टिन लूथर किंग और नेल्सन मंडेला की लड़ाई से कहीं ज्यादा कठिन थी और कहीं ज्यादा चुनौतीपूर्ण थी। लेकिन नेल्सन मंडेला और वे लोग दुनिया में छाए। लेकिन आंबेडकर को जाने नहीं दिया गया। वे जब जाते हैं तो समतामूलक समाज का सपना देखते हैं। सभी एक खुली हवा में सांस ले सकें। समाज में जो घुटन है, वह महसूस कर रहे थे। ऐसे में आंबेडकर को बुद्ध में रोशनी मिलती है। क्योंकि वहां समता-स्वतंत्रता और बंधुत्व के मूल्य हैं। समता-स्वतंत्रता-बंधुत्व का त्रि-सूत्र उन्हें गौतम बुद्ध में मिला। उनके सामाजिक चिंतन में मिला। अगर ध्यान दें आप तो फ्रांस में जो क्रांति हुई थी, उसके भी यही तीन सूत्र थे। फ्रैंच रिवोल्यूशन तो आज हुई, लेकिन हमारे यहां बुद्ध के काल में समता-स्वतंत्रता और बंधुत्व के तीनों सूत्र मौजूद थे। दुनिया का सबसे पढ़ा-लिखा रचनाकार उसी तरफ जाता है। बौद्ध हो जाने का क्या मतलब है। क्या आंबेडकर बौद्ध भिक्षु हो गए थे? वहां से उन्हें चिंतन मिलता है। जो समाज का

गरीब से गरीब आदमी है। जहां समाज में एक आदमी को इतना ऊपर उठा दिया गया है और दूसरे को अछूत बना दिया गया है तो यह कैसे खत्म हो सकता है। ऐसे में बुद्ध का समाज ही लोगों को राह दिखा सकता है।

हमारे यहां तीन सबसे बड़ी सामाजिक क्रांतियां हुई हैं। एक तो बुद्ध की सामाजिक क्रांति। दूसरी मध्यकाल में आज से छः सौ साल पहले निर्गुण भक्ति आंदोलन की क्रांति। तीसरी फुले और आंबेडकर की आधुनिक समतावादी क्रांति। ये तीनों क्रांतियां समाज में परिवर्तन के लिए थी। समाज के तमाम पीड़ित-उत्पीड़ित, वंचित लोगों की बराबरी की बात करती हैं। यही सृजन की प्रतिरोधी परंपरा है, मानवतावादी परंपरा है। बुद्ध, कबीर, फुले, आंबेडकर, भगत सिंह की परंपरा है। पेरियार की परंपरा है। वंचित समुदाय के हक में मुख्यधारा के चिंतकों और लेखकों द्वारा बहुत ज्यादा तवज्जो नहीं दी गई है। और वहीं बुद्ध व कबीर सहित जनपक्षधर परंपराएं आम लोगों के लिए लड़ती रही।

चाहे जनवादी लोग रहे हों या प्रगतिशील लोग भगत सिंह, पेरियार व आंबेडकर को नायक मान कर चलते हैं। 80 प्रतिशत वंचित समुदाय के लोगों के हकों-हुकूक को लेकर लड़ते रहे हैं और अपना बलिदान देते रहे हैं, शहीद होते रहे हैं। आज उन्हें याद करना अपनी चुनौतियों से हम कैसे मिलें, इसको उनके माध्यम से हम समझ सकते हैं। उन्होंने कैसे उन चुनौतियों का सामना किया। कैसे मध्यकाल में बराबर उनकी हत्याएं की जाती थी। मध्यकाल के सूफियों और संतों ने जिस प्रकार से आंदोलन किया था। वह दूसरी सामाजिक क्रांति थी। मीरा बाई की हत्या कर दी गई थी। पल्टू दास को अयोध्या में जिंदा जला दिया गया था। उसी मध्यकाल में कबीर व रैदास कैसे बच गए? यह सोचने की बात है। इतना हिंसा का माहौल था। जो रूढ़िवादी ताकते हैं, वे चाहती हैं चाहे कि समाज बंटा रहे। यथास्थिति बनी रहे, और उसको शोषण करने का मौका मिलता रहे। जिस दिन जनता जागरूक हो जाएगी कि-

सिंहासन खाली करो कि जनता आती है।

अब तुम बहुत अत्याचार कर चुके। हमने बहुत सोचा, बहुत भोगा। लेकिन अब वह नहीं सहेगा। अब तुम्हें सिंहासन खाली करना पड़ेगा। क्योंकि जनता आगे आ रही है। यह हमारी जनता कौन है। वह जनता कौन है। वह वही अपढ़ जनता है, जो बराबर चाहती रही है और रचनाकारों को चुनौती देती रही है कि-

जिस तरह हम बोलते हैं, उस तरह तू लिख
और उसके बाद भी हमसे बड़ा तू दिख।

कबीर, रैदास, बुल्लेशाह, बाबा फरीद ने जनता की हजारों साल से मिलती चुनौती को पहली बार स्वीकार किया था। वे जनता के बीच से थे और पहली बार कलम उठाई थी। जनता की आवाज को बुलंद कर रहे थे। उन्होंने आम आदमी की भाषा में लिखा। उन्हीं की तरह लिखा। उन्हीं के लिए लिखा। इसलिए आज कबीर, बाबा फरीद, रैदास व बुल्लेशाह हमारे पुरखे बन गए हैं। यह भाषा होती है, यह चिंतन होता है और यही संस्कृति होती है। इस तरह से संस्कृति निर्मित होती है।

संस्कृति कोई एक नहीं है। विभिन्नता है। जो हठधर्मी लोग हैं, वे दूसरी आवाज को दबाना चाहते हैं। जनता की आवाज को वहां दरकिनार कर दी जाती है। बुद्ध ने जाति व्यवस्था और वर्ण

व्यवस्था के खिलाफ बहुत भयंकर संघर्ष किया है। वेदांत दर्शन भाववादी दर्शन है। बुद्ध के दर्शन ने भारतीय दार्शनिकों का चिंतन वैज्ञानिक और तार्किक दृष्टि दी। भाववादी वेदांग में तर्क के लिए कोई गुंजाईश नहीं है। आप तर्क नहीं कर सकते। ईश्वर ने सबको जन्म दिया है। ठीक है। यदि आपने यह सवाल उठाया कि ईश्वर को किस ने जन्म दिया। अतार्किक बात है। यह नहीं होगा। यहां आस्था और विश्वास रखो। यानी ये जो चाहते हैं पुरोहित लोग, चाहे वह हिन्दू समाज के पुरोहित हों या मुस्लिम समाज के पुरोहित हों। जैसा वे चाहते हैं उसे मानो। उसमें तर्क मत करो। तभी उनका धर्म होगा। लेकिन तर्क के लिए गुंजाईश नहीं है। लेकिन बौद्ध धर्म दुनिया में ऐसा है, जो दुनिया के तीन सबसे बड़े धर्मों में से एक है। क्योंकि वह तार्किक है। वैज्ञानिक है। वह कार्यक्रम की श्रृंखला पर आधारित है। उसमें चिंतन होता है। वह मानते हैं कि जो कार्य घटित हो रहा है। उसके होने का कारण होना चाहिए। कारण का पता लगा लो। कारण खत्म कर दो तो दुख खत्म हो जाएगा।

चाहे इस्लाम हो, क्रिश्चियनिटी हो या बुद्ध धर्म हो। जिस हिन्दू धर्म की हम बात करते हैं, वह भारत और नेपाल को छोड़ कर बाहर कहीं नहीं है। हिन्दू धर्म भारत में ही क्यों सिमट कर रह गया। अपने आप को आत्ममुग्ध होकर ना देखें। अपनी समीक्षा करते हुए, अपनी कमजोरियों और कमियों को भी देखें। आखिर क्या कारण है कि हमारे देश जातिवाद की इतनी जटिलता है। इतनी जटिलता प्राय: ही दुनिया के किसी अन्य धर्म समाज में हो जितनी हमारे यहां है। उसे कैसे दूर करें।

हमारे यहां प्रतिरोधी परंपरा के लेखकों ने जो काम किया, उनके चिंतन व लेखन को लगातार हाशिये पर रखा गया। बौद्ध दार्शनिकों का जो चिंतन रहा, उनकी जो किताबें रहीं, हमारे देश से गायब हैं। एक समय बौद्ध दार्शनिक बौद्ध लेखक अश्वघोष जो दुनिया में सबसे ज्यादा पढ़ा जाने वाला लेखक रहा है। बहुत बड़ा रचनाकार रहा है। उसने तीन महाकाव्य लिखे। नाटक लिखे। बौद्ध दार्शनिक था। उनकी रचनाओं के अनुवाद जर्मन, फ्रैंच व अंग्रेजी में ना जाने कब के हो चुके थे। चीनी व जापानी भाषा में भी अनुवाद बहुत पहले हो गए थे। लेकिन भारत एक ऐसा देश हैं, जहां के वे लेखक-चिंतक थे, हमारे देश में ही उनकी रचनाएं गायब हैं। यह कितनी विडंबना की बात है कि जो इतने बड़े लेखक हुए, जो दुनिया को रास्ता दिखा रहे हैं, प्रकाश फैला रहे हैं। उनकी भाषाओं में उनके अनुवाद हो रहे हैं। चीन, जापान तथा पश्चिमी यूरोप के देश जान रहे हैं, हमारे यहां उनकी रचनाएं गायब हैं। क्या कारण रहा होगा। एक महान रचनाकार दुनिया में पढ़ा जा रहा है। घरों में उनकी रचनाएं हैं तो भारत के घरों में भी तो उनकी रचनाएं होनी चाहिएं थी।

यह दीगर सवाल है कि नालंदा और तक्षशिला किसने जलाया। आपने जला दिया। उसने जला दिया। लेकिन वे रचनाएं कहां गई। लेकिन अगर एक भी रचना रह गई है। जैसे वज्रसूची नाम की रचना उनकी भारत में रह गई थी। कितने लोग जानते हैं इस बात को। क्यों नहीं जानते। चाहे वे प्रगतिशील लोग हैं या जनवादी लोग। इनको भी नहीं पता है। बहुत बाद में जब मैनेजर पांडेय ने एक लिखा- कि क्या आपने वज्रसूची का नाम सुना है। तब लोगों ने जाना कि वज्रसूची नाम की एक रचना है जोकि जाति व वर्णव्यवस्था को जड़ से उखाड़ फेंकने का संकल्प करती है। हम जब जातिवाद के खिलाफ काम कर रहे हैं तो हमें अपनी विरासत क बौद्ध भिक्षु मानवतावाद एवं ज्ञान का प्रचार-प्रसार कर रहे थे, समता, स्वतंत्रता और बंधुत्व का प्रचार कर रहे थे, उनके विचारों को खत्म करने के लिए ना जाने कितने बौद्धों का सर कलम किया गया। यह हमारी विरासत है, उससे प्रेरणा लेते हैं कि अपने समय में जो संकट आए थे, बुद्ध और उसके अनुयाईयों ने कैसे उसका मुकाबला किया। कैसे संघर्ष किया था। अपना बलिदान भी दिया था। अगर उन्होंने बलिदान ना दिया होता तो आज हम इस स्थिति में ना होते। अगर डॉ. आंबेडकर ने योगदान ना किया होता तो बहुत सारे लोग शिक्षा-संस्थानों तक ही नहीं पहुंच पाते। यह हमारी विरासत है।

हरियाणा और पंजाब में डेरों की जटिल परंपरा है। डेरे प्रतिगामी परंपरा के प्रतीक हैं। जबकि प्राचीन काल में हरियाणा पंजाब की धरती सूफियों की मानवतावादी परंपरा की धरती रही है। हमारी रग-रग में यह परंपरा मनुष्यता को प्रवाहित करती है। मनुष्यता को नष्ट करने वाले डेरों की परंपरा बन रही है, डेरे किलों की तरह हैं। डेरों में उन्होंने अस्त्र-शस्त्र रखे हुए हैं। वे धन और पाखंड के केन्द्र हैं। पंजाब की तबाही में डेरों की बड़ी भूमिका है, जो सैनिक छावनियों की तरह काम करते थे और आतंकवाद को प्रश्रय देते थे। हमारा पूरा समाज उसकी जकड़न में है। उनका इतना वर्चस्व हो गया है कि कदम-कदम पर आपको धमकाया और डराया जा सकता है। हत्या भी की जा सकती है। अपनी परंपरा से हमें प्रेरणा मिलती है। लड़ने का साहस मिलता है कि हम सच बोलेंगे और सच के लिए कुछ भी करेंगे।

आज वंचित समुदाय की 80प्रतिशत आबादी का कोई प्रतिनिधित्व नहीं है। इसलिए उनकी बातें कहीं होती ही नहीं हैं। मुट्ठी भर लोग हैं जो सत्ता पर कायम हैं। उन्हीं की बातें होती हैं। किसानों की बातें नहीं सुनी जाती। आज किसान सड़कों पर हैं। यह कितनी विडंबना की बात है कि देश का किसान जो आर्थिक विकास की रीढ़ है, उस किसान को आत्महत्याएं करनी पड़ रही

हैं- कर्नाटक, महाराष्ट्र सहित अनेक राज्यों में। अब तो उत्तर भारत में भी किसान आंदोलन बढ़ता जा रहा है। किसान का माने कौन है, जिसे आप पिछड़ा समाज कहते हैं। खेती वही कर रहा है। सबसे ज्यादा उत्पीड़न आज किसानों, महिलाओं, युवाओं का हो रहा है। जनता का हो रहा है। यह बड़ी चुनौती है। उसे कैसे हम और बुद्धिजीवी पटरी पर लाएं। कैसे रास्ता तैयार करें। कैसे किसानों की आत्महत्या का दौर बंद हो जाए।

रास्ता दिखाने के लिए हमें लोकधर्मी चिंतन को अपनाना होगा। जब शास्त्रधर्मी चिंतन हावी हो जाता है और लोकधर्म और लोकजीवन की उपेक्षा करता है तो वहां पर संकट खड़ा हो जाता है। जैसे मध्यकाल के बारे में हम बात कर रहे थे। मीराबाई बड़ी कवयित्री थी। जीव गोस्वामी उस समय के बड़े विद्वान थे। जीव गोस्वामी ने उस समय भक्ति रस चलाया। भक्ति का शास्त्र लिखा। भक्ति को दसवें रस के रूप में प्रतिष्ठित किया। उस पर शास्त्र लिखा। जब राणा वंश के उत्पीड़न से प्रभावित होकर उस देस छोड़कर मीराबाई वृंदावन आई और यह कह कर आई-

राणा थारा देस बड़ो रंग रूढ़ो,
थारे देस में संत बसैं नहीं, लोग बसैं सो कूड़ो।

तुम्हारा समाज कूड़ा समाज है, क्योंकि इसमें संतों और भक्तों का अपमान होता है।

राणा भक्त संहारा,
मूर्ख जड़ सिंहासन बैठा पंडित फिरता द्वारा
राणा भक्त संहारा

ऐसा कहने का साहस उस समय मीरा बाई ने किया था। मीरा बाई ने कहा- मूर्ख जड़ सिंहासन बैठा, पंडित फिरता द्वारा, मीरा के प्रभु गिरधर नागर, राणा भक्त संहारा। राणा राजस्थान का सर्वोच्च राजपूत वंश रहा। उस वंश की बहू अपने वंश और उसकी सत्ता को चुनौती देती है। यानी सामंतवाद के गढ़ में मीरा ने चुनौती दी थी कि राणा हत्यारा है। वह साधु संतों माने बुद्धिजीवियों या जो सच्ची बात कहते हैं, उसका हत्यारा है। मध्यकाल के इतिहास में इस प्रकार की चुनौती मीरा ने दी।

मीरा जब वृंदावन पहुंची तो जीव गोस्वामी के पास पहुंची। यह प्रसंग बताता है कि शास्त्रधर्मी कितना जड़ होता है और लोक जीवन जीने वाला कितना यथार्थ होता है। जीव गोस्वामी जी के यहां उन्होंने कहलवा भेजा कि हम उनसे मिलना चाहते हैं। संदेशवाहक गया और कहा कि एक स्त्री आई है और आपसे मिलना चाहती है। एक झटके में गोस्वामी ने कहलवा भेजा कि हम किसी स्त्री से नहीं मिलते। मीरा ने संदेशवाहक को कहा - अपने स्वामी से कहो कि अभी तक तो हमने यह सुना था कि वृंदावन में केवल एक पुरूष रहता है। बाकी तो सब स्त्रियां रहती हैं। दूसरा पुरूष कहां से पैदा हो गया। सांख्य दर्शन जब दर्शन की भाषा करता है तो उसमें पुरूष एक होता है और बाकी सब प्रकृति होती है। यानी प्रकृति माने गोपियां और पुरूष एक कृष्ण है। प्रकृति मतलब गोपियां या स्त्रियां। मीरा ने जब सांख्यदर्शन की भाषा में पुरूष और प्रकृति की भाषा में उत्तर दिया। यह उत्तर जब गोस्वामी ने सुना तो बिना खड़ाऊं पहने नंगे पैर दौड़े आए। उन्होंने समझा कि यह तो कोई पहुंची हुई स्त्री है। मीरा ने कहा कि क्या यही आपका दर्शन है। यदि कोई सामान्य स्त्री है तो उससे आप नहीं मिलेंगे। अगर कोई पढ़ी-लिखी विदुषी है तभी उससे आप मिलेंगे। यही आपका शास्त्र चिंतन है। वैदिक परंपरा का चिंतन है। जीव गोस्वामी मीरा बाई को क्या पढ़ाएंगे। मीरा बाई ने गोस्वामी को पढ़ाया कि सिद्धांत जड़ होता है और जीवन हरा-भरा होता है। अरे भक्ति का शास्त्र रचने वाले आपको यही नहीं पता कि भक्ति आंदोलन भेदभाव तोड़ने वाला है। स्त्री-पुरूष के भेदभाव को तोड़ने वाला है। सबके भीतर आपसी भाईचारा और समतामूलक समाज के निर्माण का संदेश देने वाला है। उसी भक्ति आंदोलन का शास्त्र लिखने वाले यदि आप स्त्री-पुरूष में भेदभाव पाले हुए हैं। स्त्री के ऊपर पुरूष की वर्चस्वता को स्वीकार करके जी रहे हैं तो आप कौन विद्वान बनेंगे।

यह लोकधर्मी चिंतन है - कबीर का है, रैदास का है, मीराबाई का है। यह हमारी प्रतिरोधी धारा की पूरी एक परंपरा है। जो लोकधर्मी परंपरा है, जो लोक जीवन और समाज को महत्व देती है। उनके हित के लिए बराबर सक्रिय रही है और अपने समय के वर्ण-व्यवस्था के अत्याचारों के खिलाफ आवाज उठाई है। समय-समय पर उनका उत्पीड़न भी हुआ है, दमन भी हुआ है। कभी-कभी उनकी हत्याएं भी की गई। रैदास का उत्पीड़न किया गया। कबीर का उत्पीड़न किया गया। तुलसीदास का भी किया गया,

तुलसीदास हालांकि वर्ण व्यवस्था के समर्थक थे। 'जात-पात माने नहीं कोई, हर को भजे सो हर का होई' के रामानंद के शिक्षाओं से वे प्रभावित हुए थे। जाति-व्यवस्था का दंभ वे ताक पर रख कर आए थे। क्यों मध्यकाल के इतने बड़े कवि तुलसी दास की एक पंक्ति भी गुरू ग्रंथ साहब में शामिल नहीं हुई। रैदास के छंद हैं। कबीर और मीरा बाई के छंद भी उसमें हैं। या दूसरी भाषाओं के संतों की वणी भी उसमें शामिल की गई है। गुरूग्रंथ साहब में वे ही रचनाएं शामिल की गई हैं, जोकि मानवतावाद में यकीन करती हों। वे लेखक या रचनाकार या संत जो जाति-व्यवस्था का विरोध करते हों। जाति-व्यवस्था का समर्थन करने वाले नहीं। तुलसी दास ने वर्ण-व्यवस्था का समर्थन किया।

लोग कबीर और रैदास की ढ़ाल बन कर खड़े हो गए।

रैदास ने कहा-

ब्राह्मण को ना पूजिए जो हों गुणहीन।

चरण चंडाल के जो हों गुण प्रवीण।

ब्राह्मण की एक कुल में जन्म लेने मात्र से पूजा ना करो। कर्म को देखो। जन्म से कोई जात श्रेष्ठ नहीं होती है। कर्म से कोई ब्राह्मण या शूद्र बनता है। केवल ब्राह्मण होने मात्र से उसकी पूजा ना करो। यदि उसकी तुलना में जिसको शूद्र कहते हैं, उसमें शिक्षित व विद्वान का गुण है तो उसको पूजो। तुलसीदास ने इसका जवाब दिया। यह विचारों का संघर्ष है। सृजन की परंपराओं का संघर्ष है। तुलसी ने कहा-

पूजी विप्र सकल गुणहीना,

यह सृजन की विचारधाराओं का द्वंद्व है, जो बराबर है। एक शास्त्रधर्मी विचारधारा है दूसरी लोकधर्मी विचारधारा है। तुलसीदास लोक के समर्थक होने के बावजूद शास्त्रधर्मी विचारधारा के पक्ष में खड़े हो जाते हैं। वर्ण व्यवस्था के पक्ष में खड़े हो जाते हैं। शंकराचार्य व कुमारिल का बुद्ध के साथ संघर्ष हुआ था। जो बुद्ध के क्रांतिकारी चिंतन को ध्वस्त करके दुष्प्रचार करके उन्होंने उसमें आत्मसात कर लिया था। वही तुलसीदास ने सिद्धों, नाथों व संतों के चिंतन के साथ किया जो बुद्ध की चिंतन परंपरा का अगला विकास है। उसे ध्वस्त किया गया और मान लिया गया रामचरितमानस समन्वय की विराट चेष्टा है, जिसमें सब कुछ समाहित हो गया तो सब हो गया।

समन्वय का दर्शन बहुत खतरनाक होता है। समन्वय का मतलब क्या होता है और आज भी समन्वय की चुनौतियां बहुत ज्यादा जटिल हैं। आप देख रहे हैं कि कैसे उनको आत्मसात किया जा रहा है। कैसे उनका ब्रह्मणीकरण किया जा रहा है। कैसे उनका हिन्दुकरण किया जा रहा है।

आत्मसात करने के लिए क्या अपनाया। जो विचारधाराएं क्रांतिकारी विचारधाराएं हैं। पहले तो उसका जमकर विरोध करो। लगातार विरोध करने से वे खत्म हो जाएंगी। लेकिन वे यदि इतनी जीवंत हैं कि घोर विरोध करने के बावजूद अगर वह जिंदा है तो दुष्प्रचार करो। आज का समय इसी दुष्प्रचार की चुनौती का सबसे ज्यादा सामना कर रहा है। उसी दुष्प्रचार की प्रक्रिया में चार्वाकों के साथ जो दुष्प्रचार किया गया था, उसे याद करो। चार्वाकों की जो खिल्ली उड़ाई गई, दुष्प्रचार किया गया कि ये तो कुछ नहीं हैं, इनका दर्शन क्या है। ये तो बस-जब तक जीओ सुख से जीओ, कर्ज लेकर घी पीओ। यही चार्वाक दर्शन है? वेदांतियों द्वारा उनके क्रांतिकारी सामाजिक चिंतन को खत्म करने के लिए दुष्प्रचारित किया गया। उसके बावजूद अगर वह जिंदा रहा तो कहते हैं- उसके क्रांतिकारी दांतों को उखाड़ लो और उसे निरामिष बनाकर अपने भाववादी चिंतन में शामिल कर लो। शंकर, कुमारिल ने बुद्ध के क्रांतिकारी चिंतन के साथ यही किया कि उसके क्रांतिकारी तेवर के दांत उखाड़ लिये। और प्रचारित करते हैं कि बुद्ध का सारा चिंतन शंकर - कुमारिल के वेदांग चिंतन में शामिल हो गया। उसका अलग से अध्ययन करने की क्या जरूरत है।

मध्यकाल में कहते हैं कि जब तुलसीदास ने रामचरितमानस में कबीर, रैदास, सिद्धों, नाथों और बौद्ध के चिंतन को आत्मसात कर लिया तो अलग से बुद्ध के चिंतन का अध्ययन करने की कोई जरूरत नहीं। यानी मुख्यधारा में समाहित हो गया। फुले, अंबेडकर व भगत सिंह के चिंतन के साथ भी वही प्रक्रिया चल रही है। आत्मसात करने या हजम करने की प्रक्रिया चल रही है। जो उसका विरोध कर रहा है या तो उसे मार दिया जा रहा है या उसका दमन किया जा रहा है। अपनी बात को मानने के लिए बराबर मजबूर किया जा रहा है। इस कठिन चुनौती के दौर में हम जी रह हैं। ऐसे में लोगों की इन लोगों की शहादतें हमें प्रेरणा देती है। ऐसे भारत के निर्माण के लिए प्रेरित करती है, जैसे हम रहते आए हैं- सामंजस्य व भाईचारा का जीवन कैसे बनाएं?

आए दिन अखबारों में अपहरण, बलात्कार, उत्पीड़न की घटनाएं बढ़ती चली जा रही हैं और आम यह भी कहते सुनेंगे कि भाई रामराज्य आ गया है। वही रामराज्य जिसमें शंबूक की हत्या कर दी गई थी। बाबा नागार्जुन ने बहुत पहले कहा था-

रामराज में अब भी रावण नंगा होकर नाचा है
सूरत-शक्ल वही है, बदला केवल ढ़ांचा है।

आजाद भारत में रामराज लाने का सपना गांधी जी ने देखा था। चकनाचूर हो गया। दु:स्वप्र बनकर रह गया। इसलिए नागार्जुन ने बहुत पहले उसका प्रतिरोध किया था - कि आधुनिक भारत की कल्पना में रामराज का मिथ नहीं चलेगा। आजादी के बाद साम्प्रदायिक दंगे और बंटवारा हुआ। तो उसमें उन्होंने लिखा था-

आजादी के भ्रम में हमको 22-23 साल हो गए।
आग उगलते थे जो साथी चिकने उनके गाल हो गए।
बाबा नागार्जुन ने लिखा कि
जनता मुझसे पूछ रही क्या बतलाऊं।
साफ कहूंगा क्यों हकलाऊं?

जो जनता की बात करेगा, उसे हकलाने की जरूरत नहीं होती। कबीर कभी नहीं हकलाता, तुलसीदास बराबर हकलाते हैं। तुलसी अपने समय की जाति-व्यवस्था और साम्प्रदायिकता की समस्या का कोई समाधान नहीं ढूंढ़ते। कबीर रैदास ने अपने समय में उसका समाधान ढूंढ़ा है। समस्या का समाधान अपने ही समाज में मिलेगा। इतिहास पुराण से उसका उत्तर नहीं मिल सकता है। उस समय में उन्होंने कैसे किया, इससे समाधान नहीं मिलेगा। अपने समय-समाज से टकराना होगा।

तय करो किस ओर हो तुम।

तय करना पड़ेगा कि भारत राष्ट्र के पक्ष में खड़े हैं या फिर हिंदू राष्ट्र के पक्ष में। आप भारतीय संविधान के साथ खड़े हैं या फिर उसे नष्ट करने वालों के साथ खड़े हैं। यह आपको तय करना होगा। यह तय करना हमारे सामने सबसे बड़ी चुनौती है।

जाति हमारे समाज की सबसे बड़ी सच्चाई है। उससे किनारा करके हम आगे नहीं बढ़ सकते। हमारे रचनाकारों ने इस सच्चाई को जाना था, इसलिए मनुष्य के पक्ष में एक सामान्य आदमी के पक्ष में मजदूर व किसान के पक्ष में अपना साहित्य लिखा। जिसे कबीर ने बहुत पहले रेखांकित किया था- पंडित, मुल्ले मौलवियों के रूप में।

एक आदमी रोटी बेलता है,
एक आदमी रोटी खाता है।
एक तीसरा आदमी भी है
जो ना रोटी बेलता है
और ना रोटी खाता है,
वह सिर्फ रोटी से खेलता है।
यह तीसरा आदमी कौन है?
मैं पूछता हूँ
यह तीसरा आदमीकौन है।
मेरे देश की संसद मौन है।

देश की संसद व संसद में आने वाले उत्तर प्रदेश व हरियाणा से निर्वाचित होकर संसद में गए लोग किसान के बेटे होंगे, लेकिन किसी के पास इसका कोई जवाब नहीं है कि यह तीसरा आदमी कौन है जो रोटी से खेलता है। जो खेती करता है, उसे पास मोटा चावल भी खाने को ना मिले। तो एक आदमी रोटी बेलता है और दूसरा निठल्लू और अकर्मण्य है। लेकिन सबसे बड़ा अपराधी वह तीसरा आदमी है। जो आदमी और आदमी को बांटता है। जाति और जाति को लड़ाता है। धर्मो-मजहब को लड़ाकर अपने सिंहासन का सत्ता का उल्लू सीधा करता है। तीसरा आदमी अपराधी है। असली अपराधी वही है। इस तीसरे आदमी की शिनाख्त है, जैसा मैंने कहा-कबीर ने बहुत पहले अपनी कविता में कह दिया था-

पंडित मुल्ला पांडे और काजी।

यह दोनों मुस्लिम समाज के काजी-मुल्ला और हिंदू धर्म में पंडे-पुजारी जो धार्मिक उन्माद पैदा करके, मंदिर-मस्जिद का झगड़ा पैदा करके सबको बांटते हैं। उस जनता को मुद्दों से भटकाते हैं। आज यदि कबीर होते तो उसकी हत्या कर दी जाती। उस समय भी प्रताड़ना की गई।

भीष्म साहनी जो आधुनिक रचनाकार हैं, जब नाटक लिख रहे थे तो उन्हें कबीर मिला। क्योंकि हिन्दी क्षेत्र में साम्प्रदायिकता के खिलाफ इतनी कठिन लड़ाई, जितनी कबीर ने लड़ी थी और पंजाब उसका भुक्तभोगी। विभाजन का दर्द पंजाब के लोगों ने भोगा है। वहां के रचनाकार भी जब साम्प्रदायिकता के खिलाफ मिलते हैं तो उन्हें कबीर मिलता है। भीष्म साहनी ने नाटक लिखा - कबीर खड़ा बाजार में।

मुक्तिबोध को जब नई कविता का आत्मसंघर्ष लिखते हैं तो वे कबीर को याद करते हैं। आप देख लीजिए- नई कविता का आत्मसंघर्ष लिख रहे हैं। उसमें एक निबंध है-मध्यकालीन भक्ति आंदोलन का एक अछूता पहलू। नई कविता की विषय-वस्तु, उसका शिल्प और विन्यास पर विचार करने किताब लिखी जा रही है। 600 साल पहले जो भक्तिआंदोलन हुआ था।

पंडित-मुल्ला छाड़ों दोऊ।

पंडित और मुल्ला का बहिष्कार करो, जो दोनों समाजों को झगड़ों में धकेलते हैं। बांटते हैं-मंदिर-मस्जिद की लड़ाई करवाते

हैं। इनका बहिष्कार करो। हमारे झगड़े अपने आप खत्म हो जाएंगे।

हिन्दू-मुसलमान में ऐसा सामंजस्य का संदेश देने वाले कबीर और रैदास जैसे कवि रहे हैं। उसका विकास करने वाले फुले-अंबेडकर व भगत सिंह जैसे लोग रहे हैं। उनके हम वारिस हैं। उनकी सांस्कृतिक विरासत को हम याद करते हैं। इनसे हमें प्रेरणा मिलती है। हमें अपनी सही बात को सही ढ़ंग से सही परिप्रेक्ष्य में कहने की और चुनौती का सामना करने की दिशा मिलती है।

मैं एक बार फिर से आपको बधाई देना चाहता हूँ, ऐसे जलते हुए सवाल को आज की चुनौतियों के संदर्भ में उठाकर, जब हमारे चारों ओर तलवारें मंडरा रही हैं, ऐसी बात कहना ही गुनाह है जब। ऐसे लोगों का ही वर्चस्व है। हमारे लोग खुद उनके पीछे भाग रहे हैं। तो ऐसे में उनको जागरूक करना मित्रो यह कितना कठिन काम है। 80 प्रतिशत उपेक्षित जनता भी अपने हकों को नहीं पहचान रही है। बांटने वाले लोगों की पिछलग्गू बनी हुई है। ऐसे में हरियाणा सृजन उत्सव के माध्यम जो शुरूआत की है। मैं एक बात कह कर खत्म करना चाहूँगा-

कुछ विदेशी पत्रकार मिलने के लिए गांधी, नेहरू, तिलक व डॉ. आंबेडकर से समय मांगा। 9 बजे गांधी जी का समय था। 10 बजे नेहरू का समय था। 11 बजे तिलक का समय था। सबसे अंत में डॉ. भीमराव आंबेडकर से मिलना था। सबसे पहले पत्रकार गांधी जी के यहां पहुंचे। 9 बजे का समय दिया गया था। दरबान ने दरवाजा खोला और बताया कि गांधी जी से मिलना का समय मिला था। दरबान ने कहा कि वे तो खाना खाकर सो गए हैं। अब पत्रकार नेहरू के यहां पहुंचे। नेहरू जी के बारे में भी यही उत्तर मिला सो गए हैं। उन लोगों ने सोचा कि 11 बजे से भी ज्यादा समय हो गया है। भारत के बड़े-बड़े नेता सो गए, तो अंबेडकर भी सो गए होंगे। चलते-चलते उन्हें लगा कि चलो जब आ ही गए हैं तो अंबेडकर को भी देख लें। जब 12 बजे पत्रकार उनके पास पहुंचे और उनका दरवाजा खटखटाया तो एक आदमी ने दरवाजा खोला। उन लोगों ने कहा - हम लोग विदेशी पत्रकार हैं। डॉ. अंबेडकर से मिलने का हमें समय मिला था। दरवाजा खोलने वाले ने कहा - मैं ही अंबेडकर हूँ। वे चौंक गए। जब बड़े-बड़े नेताओं के चौकीदार दरवाजा खोल रहे हैं और बता रहे हैं कि उनके मालिक सो गए हैं। और एक डॉ. आंबेडकर स्वयं अपना दरवाजा खोल रहे हैं। डॉ. अंबेडकर ने पत्रकारों का स्वागत किया। राष्ट्रीय नेता वे हैं जो सो गए हैं या राष्ट्रीय नेता डॉ. अंबेडकर हैं। अंदर आने के बाद विदेशी पत्रकारों ने उनसे पूछा कि देश के बड़े-बड़े राष्ट्रीय नेता खा-पी कर सो गए। क्या कारण है कि 12 बजे तक भी आप जाग रहे हैं। डॉ. अंबेडकर का जो जवाब था मित्रो वो आज भी हमें सोचने को मजबूर करता है। बाबा साहब ने कहा कि देखो भाई - गांधी, नेहरू को क्या चिंता है। उनके लोग तो पहले से जागे लोग हैं। इसलिए निश्चिंत होकर सो गए। हमारे लोग तो आज भी सो रहे हैं। जो चिंता कबीर को परेशान किए हुए थी-

सुखिया सब संसार है, खावै और सोवै
दुखिया दास कबीर है,जागै और रोवै।

कबीर की वही चिंता डॉ. आंबेडकर की चिंता है। जिस तरह कबीर का दुख अपना दुख नहीं था। अशिक्षा और अज्ञानता के अंधकार में धकेल दी गई जनता के दुख से दुखी होकर कबीर ने यह बात कही थी। छः सौ साल बाद वही चिंता बाबा साहब की थी। वही चिंता आज इस सम्मेलन में हमारे सामने खड़ी हुई है। जिस प्रश्न को लेकर डॉ. सुभाष आपके सामने खड़े हैं और आपको जगा रहे हैं। मैं कबीर व बाबा साहब के उद्धरणों से देखना चाहता हूँ कि पूरी जनता को संदेश दें कि आपने समाज से कितना लिया और कितना दिया। तभी आप राष्ट्र-निर्माण की प्रक्रिया में भारतीय संविधान और लोकतंत्र के मूल्यों की रक्षा के संकल्प के साथ देश को बचा पाएंगे। हमारी सृजन की परंपरा हमें प्रेरणा देती है कि उन चुनौतियों का सामना करते हुए उसे लें, जो हमारे सामने खड़ी हैं। धन्यवाद मित्रो। □□

हरियाणा की साहित्यिक परम्पराः हाली पानीपती व बालमुकुंद गुप्त'

□ प्रस्तुति सुनील कुमार
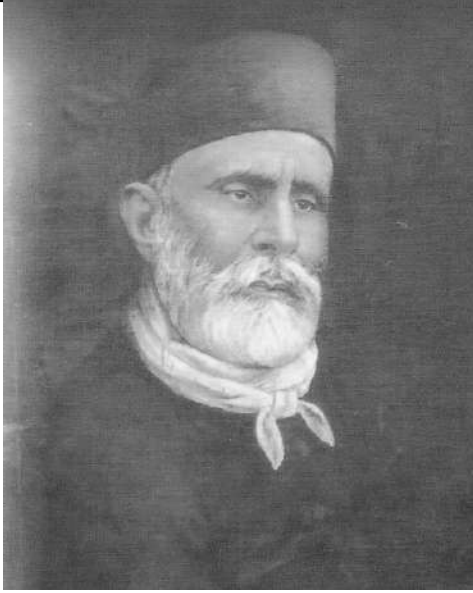
(तीसरे हरियाणा सृजन उत्सव में 10 फरवरी 2019 को राष्ट्रीय संगोष्ठी का आयोजन हुआ, जिसका विषय था 'हरियाणा की साहित्यिक परम्पराः हाली पानीपती व बालमुकुंद गुप्त'। डा. कृष्ण कुमार एसोसिएट प्रोफेसर, राजकीय महाविद्यालय, इंद्री (करनाल) ने इसका संचालन किया । हरियाणा के साहित्य की परंपरा में हाली पानीपती और बाबू बालमुकुंद का अनुपम योगदान है। इस संगोष्ठी में महेंद्र प्रताप चांद, सत्यवीर नाहड़िया व रोहतास समेत कई शोधार्थियों ने अपने विचार रखे। विषय के विभिन्न पहलुओं पर गंभीर चर्चा हुई। यहां हम महेंद्र प्रताप चांद द्वारा हाली पानीपती तथा सत्यवीर नाहड़िया द्वारा बाबू बालमुकुंद गुप्त के साहित्यिक अवदान पर विचार प्रस्तुत कर रहे है - सं.)

हाली ने लोगों को जगाने का प्रयास किया

□ महेन्द्र प्रताप चांद

प्रिय मित्रो नमस्कार ! मैं आपको पहले ही बता देता हूं, मैं उर्दू का आदमी हूं, इसीलिए मेरी हिंदी इतनी अच्छी नहीं है और मुझे आज जो विषय मिला है 'हाली पानीपती' वो भी उर्दू के आदमी थे। मैं कोशिश करूंगा उर्दू का कोई मुश्किल शब्द आए तो उसको समझा सकूं, फिर भी आपको ज्यादा मुश्किल आए तो आप मुझे बाद में पूछ भी सकते हैं।

मौलाना हाली पानीपती जैसा कि नाम से जाहिर है, पानीपत के रहने वाले थे। पानीपत के बारे में जैसा कि आप सब जानते हैं हिंदुस्तान का बहुत ही कदीम व ऐतिहासिक शहर है। कहा यह भी जाता है महाभारत में दुर्योधन से पांडवों ने पांच गांव मांगे थे, उनमें से एक पानीपत भी था, जिसे उस वक्त पांडुप्रस्थ यानी पांडवों के शहर का नाम दिया गया, जो बाद में पानीप्रस्थ और फिर पानीपत हो गया। इसी शहर में तीन जंगें भी हुई और यही शहर कई रूहानी शख्सियतों की आरामगाह भी रहा है।

13वीं सदी के अजीम महान शायर हजरत सैफुद्दीन

मोहम्मद कलंदर का ताल्लुक का संबंध भी पानीपत से था। आज भी उनकी दरगाह पर विभिन्न मजहबों के लोग दीदार को आते हैं। इस शहर में तेलशोधक कारखाना व खाद बनाने के प्लांट भी हैं, लेकिन सूबा-ए-हरियाणा के इस शहर को हैसियत इस वजह से भी हासिल है कि मौलाना अल्ताफ हुसैन हाली ने जन्म लिया। पाकिस्तान के राष्ट्रकवि हाफिज जालंधरी जिन्होंने पाकिस्तान का राष्ट्रीय गान लिखा, इनकी एक प्रसिद्ध नज़्म मलिका पुखराज की आवाज में 'अभी तो मैं जवान हूं' आप सबने जरूर सुनी होगी। उन्होंने पानीपत पर एक नज़्म लिखी थी, जिसमें उन्होंने कहा था।

इस सरजमीं को मिला रुतबा-ए-आली
इस बस्ती की खाके-पा से पैदा हुआ हाली।

वो कहते हैं कि हमें फ़ख्र है इस बात पर कि हाली जैसे शायर पानीपत की धरती पर पैदा हुए, वहीं पर पानीपत को फ़ख्र है उस धरती पर हाली का जन्म हुआ।

हाली का पूरा नाम ख्वाज़ा अल्ताफ हुसैन हाली था। हाली का जन्म 1837 में हुआ था। कुछ समय बाद ही उनके पिता का देहांत हो गया। इसीलिए सारे घर की तमाम जिम्मेदारी उनके भाई पर थी उनकी कुछ समय बाद शादी हो गई थी। पर उनमें अपनी तालीम (पढ़ाई) करने की सच्ची लगन थी वो शादी के कुछ दिनों बाद ही घर छोड़कर दिल्ली चले गए थे, परन्तु उनके भाई ने उन्हें ढूंढ लिया वो उन्हें घर ले गए। उनके भाई ने उन्हें हिसार के डी.सी. आफिस में मामूली रुपयों के लिए नौकरी लगवा दिय। यह नौकरी उन्होंने सिर्फ अपने भाई के लिए की।

अपनी पसंद और बैलेन्स के बारे में कहते हैं-

'सादी बानी से गुजरते अपने आप से नहीं
ठाम में रहते हैं, सुबकता सादबानों की तरह।'

हाली कुदरत से एक दर्दमन्द दिल लेकर आए थे। वो किसी पर जुल्म होता नहीं देख सकते थे। मौलवी उर्दू बाबा आंखों देखा हाल बता रहे थे कि हाली किसी प्रोग्राम में गुजरात गए थे। इस दौरान कुछ व्यक्ति हाली से मिलने आए तो व्यक्ति दरवाजे के सामने उतरने की बजाए थोड़ा आगे उतरे, जो गरीब व्यक्ति टमटम चला रहे थे, उन्होंने आपे से बाहर होकर उनको कई हंटर दे मारे। हाली जी बरामदे में खड़े देख रहे थे। बरामदे में घूमते हुए हाली कहते हैं कि हाय जालिम ने क्या किया, मानो वो हंटर मुझे ही लगे हों।

वो एक बार इलाहाबाद में किसी के घर में रूके थे। वहां उन्हें किसी बच्चे की रोने की आवाज आई। तो सवेरे उन्होंने उनके यहां डाक्टर को हाल चाल जानने को भेजा और जब तक पूरी तरह ठीक नहीं हुआ, उसका पता लेते रहे, ऐसे ही वो एक बार तांगे से जा रहे थे, एक जगह बहुत भीड़ खड़ी थी। किसी मेहतर का बच्चा गंदे नाले में पड़ा था। कोई भी बाहर नहीं निकाल रहा था, क्योंकि वो अछूत का बच्चा था। तो हाली उन्हें खुद वहां से निकाल कर घर तक छोड़कर आए।

महेंद्र प्रताप चांद

हाली की बेटी विधवा हो गई थी। उनका एक बेटा था, जिसको मिर्गी के दौरे पड़ते थे। हाली अपनी बेटी को बड़े प्यार दुलार से रखते थे। हाली जी औरतों का बहुत सम्मान करते थे। औरतों की तालीम के लिए उन्होंने एक मदरसा कायम किया। उनके समय में कम उम्र में लड़कियों की शादी हो जाती थी। उन्होंने विधवा को दोबारा शादी कराने की भरपूर वकालत की थी। औरतों के बाबत उनकी दो नज्में बहुत मशहूर हुई थी। एक 'मुनाजाते बेवा' यानी एक बेवा की फरियाद और दूसरी 'चुप की दाद' जहां औरतों पर चाहे कितने भी जुल्म होते रहें पर वो बोलती नहीं थी।

'मुनाजाते बेवा' को जब औरतें सुनती थी तो वो कहती थी कि काश! हम भी बेवा होती, ताकि हम भी उस नज्म के बारे में पूरा अहसास कर पातीं। हाली बहुत दर्दमंद थे, कितनी हमदर्दी उन्हें समाज से थी। उन्होंने महिलाओं के लिए समाज में बहुत काम किए। वो एक सच्चे देशभक्त थे। उनका एक शेर देखिए-

'तेरी एक मुश्ते खाक (मुट्ठी) के बदले
लूं न हरगिज अगर बहिश्त (स्वर्ग) मिले।

उनका कहना था कि जब देश पर मुसीबत आए तो अपने सारे सुख-दुख छोड़कर देश सेवा में लग जाना चाहिए। इस तरह से वो बड़े देशभक्त थे।

गालिब भी उर्दू में नज़्म लिखते थे। ये पहले सामाजिक साहित्यकार थे। उनकी पहले की गजलें पारम्परिक तरीके से लिखी गई थी। उन्होंने समाज की समस्याओं पर नज्में लिखी तो उन्हें समाज ने ताने भी दिए, पर वे डरे नहीं।

गालिब का एक शेर है-

'बस के मुश्किल हर एक काम का आसां होना
आदमी को भी मयस्सर नहीं इंसान होना।'

सर सैयद अहमद खान से मिलने के बाद हाली ने नई तरह की कविताएं लिखनी शुरू की। पहले जो कविताएं लिखी थी, उनका उन्हें फिर कोई महत्व नहीं लगा। उन्होंने अहमद खान की संगति में आने के बाद बदलाव किया और फिर समाज से संबंधित नज्में लिखनी शुरू की थी। सर सैयद अहमद ने भी हिन्दू मुसलमान पर भी बहुत कुछ लिखा था। हाली भी उनसे बहुत प्रभावित हुए। 'मद्दो ज़ज़रे इस्लाम' एक नज्म हाली इनसे प्रभावित होकर लिखी। उन्होंने देश के लोगों को जगाने का प्रयास किया। नज़्म के माध्यम से बताया कि देश गुलाम है और तुम सो रहे हो, तुम्हें अपने मुल्क की परवाह नहीं है।

हाली की इस तरह की कविताओं के कारण लोग साहित्यिक मंचों पर ताने कसने लगे और उनके खिलाफ तरह-तरह की बातें होने लगी, पर वो बहुत ही नम्र स्वभाव के थे। उन पर बहुत हमले हुए। इसको देखकर कुछ व्यक्ति उन्हें कहते कि आप इन्हें कुछ भी क्यों नहीं कहते। इसके जवाब में वो कहते कि 'नुक्ताचीनी' आलोचना का एक बेहतरीन जरिया है, यह जरूरी है लोगों को करनी चाहिए। यह कोई ऐब नहीं है :

क्या पूछते हो क्योंकर, सब नुक्ताचीं हुए चुप
सब कुछ कहा उन्होंने पर हमने दम न मारा।

अपने मुंह मिया मिट्ठू बनने से उन्हें कड़ा ऐतराज था। आज के जो लेखक चार शेर लिखकर जगह-जगह सुनाते फिरते हैं, वहीं हाली बहुत शर्मीले थे। वो नज्में सुनाते नहीं थे। हाली में आत्मविश्वास और आत्म-सम्मान की भावना खूब थी। वो कहते थे कि इससे पहले लोग आपकी इज्जत करें, पहले आप अपनी इज्जत करो। अगर आपको स्वयं पर भरोसा नहीं है, तो लोगों से आपको कुछ भी नहीं मिलेगा। मैं आपको उनकी साहित्यिक उपलब्धियों के बाबत जरा सा बतलाऊंगा-

हाली जीवनी लिखने वाले पहले उर्दू लेखक थे। उनकी जीवनी 'यादगारे गालिब' थी। दूसरी रचना सर सैद अहमद खान की 'हयाते जावेद' थी। इसके साथ ही वे उर्दू के पहले आलोचक भी थे। उन्होंने 'मुकद्दमा-ए-शेरो-शायरी' लिखी। इसके अलावा उन्होंने उर्दू में अनेक लेख, शेरो शायरी और नज्में भी लिखीं। उनके खानदान के कुछ लोग थे, जिनकी अपनी पहचान थी। ख्वाजा सज्जाद हुसैन (हाली के पुत्र) पंजाब में स्कूल इंस्पेक्टर थे। ख्वाजा सैयद (पद्म विभूषण) शिक्षा से जुड़े रहे। बेगम साल्य हुसैन (लेखिका, उपन्यास, बारी विमर्श, आत्मकथा), साजिदा जैदी, जाहिद जैदी (प्रोफेसर अलीगढ़ मुस्लिम युनिवर्सिटी), ख्वाजा अहमद अब्बास(फिल्म डायरेक्टर), डा. सईदा सैयदन जो भी जिंदा है, भारत के योजना आयोग सदस्य रहीं, उन्होंने हाली की रचनाओं का अंग्रेजी अनुवाद किया है इसके साथ मैं अपनी बात को खत्म करता हूं। बहुत-बहुत शुक्रिया आपका।

नवजागरण के अग्रदूत तथा गुलाम जनता के वकील—बाबू बालमुकुंद गुप्त

सत्यवीर नाहड़िया

(सत्यवीर नाहड़िया जी पिछले 20 वर्षों से 'दैनिक ट्रिब्यून' अखबार में कॉलम लिख रहे हैं। बाबू बालमुकुंद गुप्त परिषद रेवाड़ी के संस्थापक सचिव हैं।)

सत्यवीर नहाड़िया

मैं मंच को प्रणाम निवेदित करता हूं। वे सामने बैठे साहित्य, कला-संस्कृति व सिनेमा के मनोप्रियों को भी प्रणाम करता हूं। आज मुझे जो बातचीत रखने का विषय मिला है, वह बाबू बालमुकुंद गुप्त से जुड़ा है, मैं कोशिश करूंगा कि संक्षिप्त में उन पर सारगर्भित बात रख सकूं।

बालमुकुंद गुप्त जी का जन्म 14 नवम्बर 1865 को तत्कालीन रोहतक के गुड़ियानी गांव में हुआ था। यह पठानों का गांव था, जो मुख्य तौर पर चार बातों के लिए विख्यात था। वे शेर, घोड़े, सौदागर और कोठी का पानी थे। उनकी प्रारंभिक शिक्षा नीम मकदम मदरसे से हुई थी, उर्दू और फारसी में। जब वे चौदह वर्ष के थे, इनके पिता की मृत्यु हो गई थी। सियालकोट से लेकर पूरे होडल तक बालमुकुंद जी जैसा विद्यार्थी नहीं था, वो पांचवीं कक्षा में पहले नंबर पर आए थे। तब उनके पिता को बुलाकर कहा था कि ऐसा बच्चा उन्होंने आज तक नहीं देखा, यह तुम्हारे कुल का नाम रोशन करेगा। पिता और
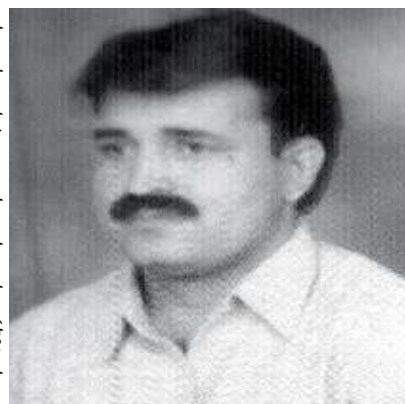
दादा के चले जाने के बाद घर में बड़े होने के कारण पैतृक बही खाते उठाने पड़े। जब इनका छोटा भाई काम में हाथ बंटाने लगा तो उन्हें पुनः स्वाध्याय किया और कविताएं लिखने लगे। तब इनकी रचनाएं राष्ट्रीय पत्र-पत्रिकाओं में छपने लगीं।

'जमाना', 'कोहिनूर' 'अवध पंच' सांद या सैदा के नए नाम से रचनाएं प्रकाशित हुई, आपको जो सम्पादन है, वो उर्दू या हिन्दी के अखबारों में आता है। 'अखबारे चुनार', 'कोहिनूर', 'बगवासी', 'भारत मित्र' का सम्पादन आपने अंत तक किया। कलकत्ता से बीमार होने के चलते अपने गांव गुड़ियानी जब लौट रहे थे। 18 नवम्बर 1960 को रेलवे स्टेशन के सामने धर्मशाला में प्राण त्याग दिए। गुप्त जी को हिंदी पत्रकारिता का मसीहा, हिंदी भाषा के निर्माता, राष्ट्रीय चेतना व नवजागरण के अग्रदूत तथा गुलाम जनता का वकील कहा जाता है। कुछ बानगी देखिए-

दोहे-

शील सतावत शीत में अर गीर सब में गाम
बीजत ही पातस कहत, कौन पाप सै राम
कैने बालक दूध के बिना, अन्न अन्न के-को
रौवे रौवे जी देते हैं कहा सुनावै और

ये उनका बहुत ही मार्मिक चित्र है। जहां मां मर गई है और बच्चा जीवित है। वह दूध के लिए तरस रहा है। जगह-जगह नर कंकाल बिखरे पड़े हैं, जिन्हें गिद्ध नोच खा रहे हैं। उन्होंने किसानों की दुर्दशा पर गद्य-पद्य दोनों में लिखा है।

दोहे -

नहीं गांव में झोपड़ी, न जंगल में खेत।
घर ही बैठे हम कियो, अपनी कंचन रेत।।

उन्होंने बालगीत भी लिखे, बानगी देखिए -

अमली की जड़ से निकली पतंग
जिसमें निकला शाह मलंग
शाह मलंग चलावै सोटी
उसमें निकली लंबी चोटी

उन्होंने अपने साहित्य में करारे व्यंग्य भी साधे हैं। बानगी देखिए -

ओम जय गोरख जागै, स्वामी गोरख जागै
सदा शिव गोरख जागै, लंदन जागे, पेरिस जागै
अमेरिका जागै, स्वामी अमेरिका जागै
ऐसा नाद करूं मैं, एक विवाद करूं मैं
सोता उठ भागै, ओम जय गोरख जागै।

इसमें उनकी समाज के प्रति कितनी बड़ी टीस है। कहीं वो लार्ड कर्जन जैसे तानाशाह को फटकारते हैं और भारतीय जनता को जगाने का प्रयास करते हैं। हिन्दी साहित्य में उनके 'शिव शम्भू के चिट्ठों' का जिक्र अगर न किया जाए तो गुप्त जी का जिक्र अधूरा है।' बानगी देखें -

एक बार लार्ड कर्जन ने कलकत्ता में मंच से भारतीयों को झूठा कहा। मॉय लार्ड - इस देश का नमक ना कि इस जलवायु का शाप देता है। वह पहले विचार बुद्धि खोता है, फिर दया भगाता है, उदारता हज्म कर जाता है और अंत में आंखों पर पट्टी बांध कर, कानों में ठीठे ठोककर, नाक में कीलें डालकर आदमी को इधर-उधर घसीटते फिरता है। आप आए और आते ही इस नमक का फल काउपिल में प्रकट कर डाला।

आज भी ऐसे घटनाक्रम होते रहते हैं। देश में विच्छेद हो रहा है, आज भी व्यंग्य हो रहा है। पर तटस्थ से कटा लिखा जा रहा है। जब बंगाल का विभाजन हुआ, तो गुप्त जी ने दो बातें जान ली थी कि भारतवासियों का हौसला कैसे बढ़ाएंगे और अंग्रेजों को औकात कैसे दिखाएं।

गुप्त के चिट्ठे की कुछ पंक्तियां देखें -

'सब ज्यों का त्यों है, बंग देश की भूमि जहां थी, वहीं है और उसका हर गांव वहीं है, जहां था। कलकत्ता को उठाकर चेरापूंजी के पहाड़ पर नहीं रख दिया और शिलांग उठाकर हुगली के पहाड़ पर नहीं आ बैठा, पूर्व व पश्चिम के बीच कोई नदी नहीं खुद गई और आपको अलग करने के लिए कोई चीन की सी दीवार नहीं खुद गई।' उनके पत्र भी साहित्य इतिहास में अमर हो गए,

उनके पत्र जो महावीर प्रसाद द्विवेदी जी को लिखे। उनकी 'सरस्वती' पत्रिका में आत्माराम जी के शीर्षक से बहुत ही प्रसिद्ध कविता प्रकाशित हुई थी, जिस पर बहुत लंबे व्यंग्य बाण एक-दूसरे की तरफ चले थे, लेकिन अंत में जब गुप्त जी नहीं रहे तो द्विवेदी जी ने कहा कि अच्छी हिंदी तो देश में एक ही लिखता था। बाल मुकुंद गुप्त। वे एक-दूसरे का बहुत सम्मान करते थे।

एक बानगी देखें -

'पंडित जी प्रणाम! आज 'भारत मित्र' पर जो कृपया करने लगे हैं, उसके लिए आपका बहुत-बहुत धन्यवाद 'भारत मित्र' आपकी सेवा में जाने लगा, कहां तक पहुंचेगा। शरद-सायंकाल वाला लेख कुछ कठिन था। समझना कठिन था। मैं उस रात बीमार हो गया था। इसलिए वह लेख अशुद्ध ही छपा। आपका दूसरा लेख भी कठिन है। सर्वसाधारण के लिए यह समझना कठिन है। इतने कठिन लेख लिखने हैं तो कुछ रोचक ढंग से लिखा करो। ऐसे कठिन लेख लिखने के साथ-साथ भाषा का ढंग भी सरल रहे तो अच्छा है। ये आपसे विनय है। उसी तरह आपकी

राय का आपको अधिकार है।

इस तरह उन्होंने बहुत सारी चीजें लिखी हैं। उनको मैं रेखांकित करता हूं- उन दिनों पत्रकारिता के तीन गढ़ होते थे, एक लाहौर, बनारस व कलकत्ता। उन्होंने कब-कब इस्तीफे दिए। आदरणीय कितने पत्रकार हैं।

आज क्या सम्पादक नाम की संस्था है, शायद बहुत कम बची है। अगर तो हाशिए पर है, अब मालिक ही सम्पादक बन बैठे हैं। खबरें प्रोडक्ट बन चुकी हैं। जब पीत पत्रकारिता से भी हम कहीं ऊपर चढ़ गए हैं। जब सनसनी ही खबरें मान ली गई हैं। तब गुप्त जी याद आते हैं। उनके इस्तीफे देखिए, पहला इस्तीफा हिंदी बगवासी से सिर्फ इसलिए दिया कि मालिकों ने कुछ चंदा अतिरिक्त प्रलोभन के चलते ले लिय। दूसरा इस्तीफा दैनिक हिंदुस्तान जिसमें मालवीय जी लेकर गए थे। 'दैनिक हिंदुस्तान' से इसलिए इस्तीफा दिया, इनके मालिक राजा रामपाल सिंह ने कहा कि आप अंग्रेजों के प्रति अतिरिक्त कठोर लिखते हैं। यह कहते ही उन्होंने इस्तीफा दे दिया, जिसे वह लिखित में रखते थे।

आज क्या सम्पादक नाम की संस्था है, शायद बहुत कम बची है। अगर तो हाशिए पर है, अब मालिक ही सम्पादक बन बैठे हैं। खबरें प्रोडक्ट बन चुकी हैं। जब पीत पत्रकारिता से भी हम कहीं ऊपर चढ़ गए हैं। जब सनसनी ही खबरें मान ली गई हैं। तब गुप्त जी याद आते हैं।

भारत मित्र में उनका कोई शुभचिंतक आया। उन्होंने कहा कि आप हमारे यहां पधारिए। उन्होंने कहा वेसे तो मैं भारत मित्र छोड़कर ही नहीं जाता लेकिन फिर भी जिसको आपने हटाया है, वो किसी भी स्वाभिमानी कलाकार के विरुद्ध है, तो मैं कभी भी ऐसे पद को स्वीकार नहीं करूंगा।

अगर आपको अनुवाद देखना है तो बंगवासी में देखिए, रत्नावली नाटक में देखिए, बांग्ला से मंडेल भगिनी को हिंदी में लाना उल्लेखनीय थी। इसी तरह रत्नावली को संस्कृत से हिंदी में लाना। वो फारसी, उर्दू, बंगला, संस्कृत, अंग्रेजी व हिंदी सहित छह भाषाओं के प्रगाढ़ विद्वान थे।

ये सब उन्होंने सीखा कैसे? हम अगर इनका जीवनवृत्त पढ़ें तो अच्छा लगेगा। एक आदमी पोस्टकार्ड से भाषा सीखता है, एक आदमी गुड़ियानी में बैठा है पोस्टकार्ड लिखता है। श्रीधर पाठक जी मैंने यह कायदा पढ़ लिया है। इस बारे में आगे कुछ बताएं। उनमें सीखने की ललक उम्र भर बनी रही, क्योंकि एक अच्छे पत्रकार को ज्यादा से ज्यादा भाषाओं का ज्ञान होना चाहिए, ऐसा गुप्त जी का मानना था।

वो लोकसंपदा के संरक्षक थे। प्रो. सुभाष जी ने एक लेख लिखा है कि गुप्त जी ने हरियाणा के सौ से ज्यादा शब्दों को देश की हिंदी में भेजा, संरक्षित किया व संजोया कुछ शब्दों की बानगी देखें-मार-धौपड़, गठठड़, चौखा जो कि हम रोज इस्तेमाल करते हैं खासकर उनकी पत्रकारिता लेखन के बारे में डा. रामविलास शर्मा जी जैसे समालोचक ने कहा कि उनके गंभीर शैली में लिखे गद्य व पद्य दोनों ही सरस होते हैं। शुक्ल जी ने कहा कि राष्ट्रीय हिंदी के लिए मिशनरी भाव से काम करने वाले सबसे बड़े कलमकार गुप्त जी थे।

हिंदू और मुसलमान की समता की बात साहित्य हमेशा जोड़ता है। पहले एक ही बोली थी उसी की दो लिपियां थीं एक फारसी एक देवनागरी, लेकिन उसी के आधार पर बंटवारा हुआ। बंटवारे की कितनी टीस है हमारे रेवाड़ी के शायर उस पूरे खाके को खींचते हैं। जो कहते थे- 'हिंदी को ज्यादा संस्कृतनिष्ठ न बनाइये, इससे यह बोझिल होती है। आचार्य द्विवेदी जी को कहा है कि आपके हर तीसरे वाक्य में अर्थात होता है। आप ऐसा लिखिए जिसमें अर्थात कम से कम हो। पाडित्य प्रदर्शन का मंच इसे न बनाया जाए। उन्होंने 'सर सैयद का बुढ़ापा' 'चूहों का मातम, पॉलटिकल होली', मास्टर वचनम, पंजाब में लॉयल्टी, दिल्ली में जोरूदाज, बड़े लाटसाहब आदि प्रसिद्ध रचनाएं लिखीं। इनमें से पंजाब में लॉयल्टी की कुछ पंक्तियां देखिए-

'देशभर में कुछ तथाकथित पढ़े-लिखे लोग अंग्रेजों के पिट्ठू रहे हैं, तो उन्हें फटकारना जरूरी था। सही दिशा में लाने के लिए उन्होंने कलकत्ता में बैठे-बैठे अपने सुबे के लोगों को रचना के माध्यम से मीठी-मीठी फटकार व्यंग्य के माध्यम से लगाई-

सुना है पंजाब देसी है, सीधा सुरपुर जावेगा।
टीस लॉयल भारत में रहकर, इज्जत नहीं गंवाएगा।
केवल लॉयल थे वहां एक लाजपत, एक अजीत
दोनों गए निकाले उनसे नहीं है किसी को अब प्रीत
ऐरा गैरा नत्थु खैरा सब पर इनकी मस्ती है
लॉयल्टी लाहौर शहर में भुट्टे से भी सस्ती है।

अंत में सिर्फ जो यह महायज्ञ चल रहा है, उसकी पूरी टीम का मुक्तक देते हुए-

निखरा-निखरा उजला-उजल पहले दो से खास नया
उत्सव है यह नव सृजन का छाया है, खास नया
इस धरती से उस अम्बर तक संघर्षों का सृजन है
बहुत बधाई देस हरियाणा को रच डाला इतिहास नया।

□□

बहुभाषी राष्ट्रीय कवि सम्मेलन

(तीसरे हरियाणा सृजन उत्सव में 9 फरवरी 2019 की शाम को बहुभाषी राष्ट्रीय कवि सम्मेलन का आयोजन हुआ। जिसमें रामस्वरूप किसान(राजस्थानी), नीतू अरोड़ा(पंजाबी), रिसाल जांगड़ा(हरियाणवी), मनजीत भोला(हरियाणवी), हरेराम समीप (हिंदी), आत्मारंजन (हिंदी), ब्रजेश कठिल (हिंदी), राजवंती मान (हिंदी), विनोद सिल्ला (हिंदी) ने कविता पाठ किया। प्रस्तुत है कुछ कविताएं)

रामस्वरूप किसान

अपडेट

बो जिकै डाळै बैठयो है
उणी नै काटै

डाळो पड़ग्यो
बे कोनी पड़्यो

बो जिण न्याव मांय सवार है
उणी में
छेक करै

न्याय डूबगी
बो कोनी डूब्यो

बे खुद रै ई पगां
कुंहाड़ी बाणै
पग किणी और रा कटै

बो कम्पलीट
अपडेट है।

अलीशेर की लाठी

अलीशेर री लाठी सूं
गा मरगी

अलीशेर री लाठी सूं
अलीशेर मरग्यो

अलीशेर री लाठी सूं
गांव रा
कई जिन्दा लोग मरग्ये

अलीशेर री लाठी सूं
गांव री
कई मरी होई लाठी
जिंदा होगी

खांदा अर सिर

म्हारै खांदां पर
बां रा सिर हा

म्हे खांदा
हटा लिया
बां का सिर
हवा म्हं
हींडता फिरै

पण खांदां री जड़ां
जमीन में ही
जकै सूं
अंकुरित होग्या
म्हारा सिर
म्हारै ई खांदा

पण
बां रै सिरां तळै
खांदा अंकुरित नी हो सक्या
आज तांहि

क्यूंकै
सिर री जड़ां
जमीन में नी होया करै

पाछणां री गंठड़ी

काश मारो सिर
ऊंट री जीभ जैड़ों नी होतो
जकी भालै री नोक सरीखी
बबूल री तीखी सूलां नै ई ढब कर लेवै

पण अफसोस
म्हारो सिर तो
ऊंट री जीभ जैड़ो ई है
जकौ जुगां सूं
पाछणां री गंठड़ी चक्यां
बां री धार रो
अनुकूलन करतो आयो है

पण भाया
म्हैं थककर तळै पटकूं
इण सूं पैलां
पाछणां री इण गंठड़ी सारू
थारो सिर चाइयै
नी तो फेर
गळो त्यार कर ले।

□□

डा. नीतू अरोड़ा

तेरे शहर की पागल औरत

इस कविता की सृजक
तुम्हारे शहर की कोई
पागल औरत हो सकती है
या फांसी लेकर मरी
किसी औरत की लाश

हां! यह हो सकता है
और कभी भी हो सकता है
पर लाशें बोलती नहीं
और पागलों की भाषा
शहर समझता ही नहीं
इसलिए किसी भी हादसे से पहले
यह औरत आपको मुखातिब है
ताकि आपको
उस मशक्कत से बचा सके
जो आप उसके पगलाने
या मरने के बारे में सोचते।

यह वही औरत है
जिसको कविता लिखने पर
आपने ज़हीन शायरा कहा
सड़कों पर उतरने पर खतरनाक
और प्यार करने पर
बदचलन औरत
और उसका प्यार
इन्कलाब व कविता
सब उसके सपने जैसा था
व सपनों से घरों को डर लगता है
सपनों से शहरों को डर लगता है
दिल्ली तो सपनों से डरी
ऊंची आवाज़ में चीखती है
डर के बिना मन की बात
जबरदस्ती कौन सुनाता है?

पर शायद
आपने डोर-बेल की आवाज़ नहीं सुनी
और वह उदास औरत
आपके हर घर में प्रवेश कर गई है

आप केवल अपने घर की
औरत के होठों से लिपस्टिक पोंछ दो
पोंछ कर देखो आंखों का काजल
व आई-लाईनर
आपको हर औरत में वही उदास औरत
दिखाई देगी
पर्स में नींद की गोलियां रखती
झूठ-मूठ हंसती
आत्महत्या के बारे में सोचती
जलती-भुनती उदास औरत
जो कभी भी पागल हो सकती है

हो सकता है
रसोई में प्याज काटते हुए
चीख मार दे
क्लास में हाज़री लगाते हुए
ऊंचा-ऊंचा हंस पड़े
आपके लिए चाय का कप बनाते हुए
दूध की जगह लस्सी डाल दे
यह भी हो सकता है
अगली बार
संवारने के लिए खोले गए बाल
कभी बांधे न जाएं।

आप अपने अंदर की घुंडी खोलो
या बंद रखो
तुम्हारे घर पागल की चीख में बदल जाएंगे
आधी आधी रात उठेंगे
ऊंचे ऊंचे हसेंगे
दहाडें मार रोएंगे
बेताल नाचेंगे
नहीं ढकीं जाएंगी
बेडौल छातियां
सोचना शुरु करो
चुन्नी तले सालों से ढकी
तुम्हारी इज्जत का क्या बनेगा ?

जोर जोर के हंसना
दहाड़ें मारकर रोना
बेताल नाचने के बाद
जब ये आरतें अगली सुबह उठेंगी
तो छोड़ देंगी

ब्रा की फिटिंग के बारे में सोचना
ओठों की कालिख समेत हंसेगी
तुम्हारे बाजार का क्या बनेगा?

हां!
ये तुम्हारे बाजारों को जलाने का सपना लेंगी
और वादा रहा इस पागल औरत का
तुम्हारे सारे उलाहनों
और अपनी सारी नमोशियों समेत
उस आग में जल जाएगी
पुनः जन्मने के लिए
पुनः प्यार करने के लिए
जब घरों को प्यार से डर नहीं लगेगा
जब शहरों को प्यार से डर नहीं लगेगा
और नहीं होगी किसी घर में
कोई उदास औरत

स्वप्नसाज

वो समझते हैं
मैं खतरनाक औरत हूं
औरतें जो सुरखी नहीं लगाती
चूड़ियां नहीं पहनती
गहनों की जगह
किताबें खरीदती हैं

जिनके बटुओं में
कंघा शीशा नहीं
कागज और कलम होती हैं
ऐसी औरतें खतरनाक होती हैं

वो मुझे खतरनाक समझ
मेरा पीछा करते हैं
मेरे घर का हर कोना टटोलते
खाली हाथ लौट जाते हैं
कहीं कुछ खतरनाक नहीं मिलता

बस वो मेरी
आंखों में देखना भूल जाते हैं
और तलाशी बिना बची रहती हैं
ये एक मात्र जगह
जहां मैं सपने छुपाकर रखती हूं ☐☐

नीलोत्पल

सवाल यह है

सवाल यह है
तुम किस चीज़ से
बचाना चाहोगे दुनिया को
हथियार से,
बाज़ार से,
या प्यार से
हथियार अगर तुम्हारी ज़रूरत है
तो तुम दुनिया नहीं
ख़ुद को बचाना चाहते हो
अगर तुम बच गए
तो समझो तुम एक जंगल के बीच हो
जहाँ कटे पेड़ों के नीचे
दबे परिंदों की आँखों में
एक ख़ूबसूरत सपना है
तुम चाहते हो
उसे घर ले आया जाए
लेकिन जैसे ही छूते हो तुम
वह टूट जाता है

तुम अगर बाज़ार को चुनते हो
तो निश्चित ही जहाँ तुम दाँव फेंकोगे
तुम्हें अपने ख़रीदे प्रतिरूप दिखाई देंगे

यह दुनिया कमोडिटी की तरह होगी
जहाँ तुम तय करोगे भाव
और उसके उतार-चढ़ाव

तुम्हारी जीत-ही-जीत होगी
लेकिन जैसे ही तुम सोचोगे
अपनी हार के बारे में
मारे जाओगे

तुम अगर प्रेम के साथ हो
तो कहना मुश्क़िल है
तुम उदास नहीं होओगे

बल्कि हर अवसर पर घेरा जाएगा तुम्हें

कई दीवारों के भीतर चुने जाते हुए
जब तुम मुस्कराते मिलोगे
बरसों बाद भी
लोग निराश नहीं होंगे
जैसे ही तुम बिखर जाओगे
दुनिया के हर दुख में

ताकि

तुम्हें सिर्फ़ प्यार करना चाहिए
और मर जाना चाहिए
ताकि ज़िन्दगी को और अधिक सख़्त चोट न लगे

केवल अपनी भाषा को मुलायम मत बनाओ
उसे खुरचो, रगड़ो, देह से ज़्यादा विदेह करो
ताकि ठीक-ठीक वह जीवन की पकड़ में हो

हम जिस बाबत एक दूसरे को समझते हैं
उसे पैना या गहरा मत करो
मिठास का लेप मत चढ़ाओ
उसे स्पर्श दों और थोड़ा दूर रखो
ताकि निकटता का बोध बना रहे

जीवन केवल पवित्र नहीं हो सकता
सारी पवित्रताएँ तुमसे दूर होने के लिए बनी है
यह एक क़िस्म का अपराध है
ईश्वर का पवित्र होना केवल उसे रहस्यमयी बनाता है
उसे परखो, सवाल दागो, उसकी मृत्यु देखो
ताकि सब कुछ नैसर्गिक बना रहे

समय एक अप्रत्याशित फूल है
जो खिलता है अंतत झर जाता है
वह अधिक बेसब्र है
वह क़ब्र पर मौजूद है, कहीं जन्म पर
उसे सीने से मत लगाओ
उसे शब्दों की तरह आने दो,
धुएँ की तरह जाने दो
ताकि कलाएं अधिक गम्मत भरी न हो

□□

हरे राम समीप

अगर ना हुई आज बोहिनी, दिन छल जाएगा
बिन पैसे के आस के ये सूरज ढल जाएगा

मिट्टी का बस एक खिलौना ले लो बाबू जी
मेरे घर भी आज शाम चूल्हा जल जाएगा

ग़ज़ल

उनको सोने की कलम चांदी की स्याही चाहिए
शेर कहने के लिए साकी सुराही चाहिए

रख दिए हैं ताक पर सबने ही अब जलते सवाल
आज के फ़नकार को बस वाह वाही चाहिए

खून से लथपथ पड़ा है हर कदम पर आदमी
क्रूरता की ओर क्या गवाही चाहिए

ख़ौफ़ बेचा जा रहा बाजार में कम दाम पर
क्योंकि ज़ालिम को मुनाफे में तबाही चाहिए

सिर्फ कहने के लिए जम्हूरियत है दोस्तो
आज भी आवाम को जिल्ले-इलाही चाहिए

आपकी बातों में आकर आपके हम हो लिए
क्या पता था आपको भी बादशाही चाहिए

दोहे

गर्व करूं किस पर यहां किस पर करूं विमर्श
आधा ये है इंडिया आधा भारतवर्ष

फिसल हाथ से क्या गिरी संबंधों की प्लेट
पूरी उम्र समीप जी किरचें रहे समेट

संबंधों का दायरा आज हुआ यूं तंग
बेटा राजी ही नहीं मां को रखने संग

बचपन में जिसकी कलम वक्त ले गया छीन
बाल पेन वह बेचता बस में दस के तीन

क्यों रे दुखिया क्या तुझे इतनी नहीं तमीज
मुखिया के घर आ गया पहने नई कमीज

लगता है इस वक्त के नहीं इरादे नेक
नदी सुखाने वास्ते हुए किनारे एक

कुरुक्षेत्र है ये नया फिर है नया यथार्थ
शत्रु खड़ा है सामने आंखें खोलो पार्थ

फिर निराश मन में जगी नवजीवन की आस
चिड़िया रोशनदान पर फिर से लाई घास

□□

आत्मारंजन

खिलौनों में

ताज्जुब है
बच्चों के खिलौनों में

घुस आए हैं तीर, तलवार,
बंदूकें, स्टेनगन, कितने ही हथियार

और इससे भी अधिक ताज्जुब
कि नहीं कोई औजार

औरत

हम उसे सोने में देखते हैं
उसके होने में नहीं
चाहते हैं, सराहते हैं
उसके सोने में सोचते हैं,
सोने में नोचते हैं.
गढ़ते हैं, मढ़ते हैं सोने में
उसके होने में नहीं

ये हाथ

ऐसे मत देखो भाई इन्हें
हाथ काले हैं, बदरंग तो क्या,
खुरदरे और सख्त
ये हाथ तमाम सौंदर्य के सृजक हैं

खिलाते सबसे सुंदर फूल
उगाते सबसे सुंदर फल
गठीले, चिकने सबसे सुंदर दाने
सबसे सख्त दाने के बीच
रचते कोमल अंकुर
पोसते सबसे नाजुक कोंपल
सबसे सुंदर बनाते हैं घर,
दीवारें पोतते सबसे सुंदर
रास्ते बनाते निष्कंटक
साफ सफ्फाक
तोड़ते सबसे सख्त पत्थर
गोढ़ते सबसे सख्त बंजर

जानते समझते हैं बिवाइयों का दर्द
हाथ की और खेत की भी
ऐसे मत देखो भाई इन्हें
हाथ काले हैं, बदरंग तो क्या,
खुरदरे और सख्त ये हाथ
□□

ब्रजेश कृष्ण

पीछा करो उनका

बड़े चतुर हैं वे
गजब के वाचाल और जादूगर
रूमाल झटकते हैं
तो उड़ने लगती हैं रंग-बिरंगी तितलियां
खाली डिब्बों पर घुमाते हैं अपना हाथ
और आसमान भर जाता है पतंगों से
हमें दिखाई नहीं देती उनकी अदृश्य डोर
उनकी बातें बहुत लुभावनी
और मुस्कान इतनी ठोस
कि हम अकबका कर
सभी को सच मान लेते हैं

इसके पहले कि वे
हमेशा के लिए बैठ जाएं हमारे कंधों पर
और बंदूक चलाकर हवा में जता सकें
अपनी जीत की खुशी
गौर करो उनकी बिछाई हुई बिसात पर
उनकी सधी हुई चालों को पकड़ो
और पीछा करो उनका

बहुत उत्साहित हैं वे

बहुत उत्साहित हैं वे इन दिनों
वे नए और अच्छे और कलफ़दार कड़क
कपड़े पहनकर आते हैं हमारे बीच
पहले तो मैं जानता था
उन सभी को अलग अलग
उनके नाम के हिज्जों के साथ

पहचान लेता था दूर से ही
उनकी अलग अलग आवाज
उनकी हर एक हरकत पर
रहती थी मेरी नजर
मगर इन दिनों
जबकि शोर में डूबो दिया
उन्होंने सभी कुछ
वे उत्साहित हैं बहुत
और मैं खो रहा हूं तेजी से
उन्हें पहचानने की ताकत

वे बोलते हैं एक ही भाषा
एक जैसा ही उनका वाक्य-विन्यास
एक जैसी ध्वनि
और एक जैसी हंसी
मैं परेशान हूं इन दिनों
कि फैल रही धुंध की एक परत
मेरे आस पास
या शायद बढ़ रहा है
मेरे चश्मे का नंबर उम्र के साथ
और सबसे बड़ी मुश्किल तो ये
कि कीर्तनियों का पार्श्व संगीत
ऐसा और इतना इतना अनवरत
कि मुझे यकीन सा होने लगता है
उनकी बातों पर
सचमुच बहुत उत्साहित हैं वे
□□

हम देर करते नहीं, देर हो जाती है

□ नाट्य रुपांतर - कृष्ण नाटक

(9 फरवरी 2019 को देस हरियाणा पत्रिका द्वारा आयोजित तीसरे हरियाणा सृजन उत्सव में कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय कुरुक्षेत्र के राधाकृष्ण सदन में इस नाटक का मंचन हुआ। दर्शकों ने इसे बहुत पसंद किया और खूब तालियां बटोरी। आप इसे देस हरियाणा के यूटयूब चैनल पर भी देख सकते हैं।

यह नाटक 'जामुन का पेड़' कहानी पर आधारित है, जिसके रचियता हिंदी व उर्दू के प्रख्यात लेखक कृश्न चंद्र हैं। यह कहानी लालफीताशाही के अमानवीय स्वरूप को उजागर करती है। इस नाटक की शुरुआत में झारखंड में वर्तमान समय में घटी घटना को जोड़ा गया है जिसमें संतोषी नामक एक लड़की की भूख के कारण मृत्यु हो गई थी। उसे राशन नहीं मिल पाया क्योंकि राशन के लिए आधार कार्ड से लिंक होना अनिवार्य था। इसका नाट्य-रूपांतर किया है कृष्ण नाटक ने। कृष्ण नाटक ने पंजाब विश्वविद्यालय से शिक्षा प्राप्त की। प्रस्तुत है 'जामुन का पेड़' कहानी का नाट्य रूपांतर।)

पहला दृश्य

(धीरे धीरे मंच पर मध्यम लाइट आती है और म्यूजिक के साथ दृश्य खुलता है मध्यम लाइट में एक औरत जिसकी उम्र लगभग 35 साल है मोमबत्ती लेकर आते हैं। नीचे जमीन पर उसकी जिसकी उम्र लगभग 12 साल के करीब है नीचे जमीन पर लेटी हुई है और जोर से चिल्लाती है वह बेटी कई दिन से भूखी है)

लड़की - रोते हुए मां रोटी, मां रोटी , भूख लगी है रोटी

मां - (बेटी को दिलासा देती है) बेटा लाती हूं कुछ खाने को, इतने ये पानी पी ले।

लड़की - (रोते) पानी नहीं, मां रोटी।

माँ - लाती हूं बेटा, लाती हूं।

(लड़की की मां अपनी बेटी को सुलाकर राशन लेने के लिए डिपो पर जाती है धीरे धीरे संगीत उभरता है कुछ लोग कोरस में मुखौटा लगाए मंच पर प्रवेश करते हैं)

माँ - साहब थोड़ा सा राशन दे दो। बेटी ने कई दिन से कुछ नहीं खाया थोड़ा राशन दे दोगे तो रोटी पका कर खिला दूंगी।

(कोरस में आवाज आती है) आधार है

माँ – आधार, आधार तो नहीं है

कोरस - चल हट !

(मंच के दूसरी तरफ जहां उस औरत की बेटी लेटी हुई थी धीरे धीरे प्रकाश उभरता है और वहां से रोने की आवाज सुनाई देती है। वो लड़की जो कई दिनों से भूखी थी रोटी, मां रोटी, रोटी करते करते मर जाती है धीरे धीरे संगीत उभरता है मां अपनी बेटी के पास आती है और जोर से चीखती है। रोते हुए असहाय से खड़ी अपनी बेटी को देखती रहती है घृणा और गुस्सा उसके चेहरे पर साफ दिखाई देता है और जोर से गुस्से में बोलना शुरू करती)

मां - आधार मांगते हो साहब, अरे कहां से लाये आधार। गयी थी आधार बनवाने, जानते हो क्या कहा उन्होंने ,अम्मा मशीन आपकी उंगलियां नहीं पकड़ रही । दिन रात मेहनत मजूरी करते करते हाथ खराब हो गए। अब मशीन उंगलियां नहीं पकड़ रही तो इसमें मेंरा क्या कसूर, आधार नहीं होगा तो क्या हमें राशन नहीं मिलेगा, आधार नहीं होगा तो क्या हमारे घर चूल्हा नहीं जलेगा हमारे बच्चे भूख से मरेंगे । अरे बोलो ना साहब बोलते क्यो नहीं अरे बोलो ना *(धीरे धीरे प्रकाश मध्यम होता है और संगीत उभरता है)*

गीत

कौन सुने अब किसको सुनाएं
चीख चीखकर सब चिल्लाएं
क्या ,अपना नं. आधार से लिंक करवाएं
सो रहा है चौकीदार , चोर चोरी करके फरार
कौन सुने अब किसको सुनाएं
चीख चीख कर सब चिल्लाएं

अपना नं. आधार से लिंक करवाएं
लिंक करवाएं ...

(धीरे-धीरे गीत खत्म होता है और बादलों की गड़गड़ाहट के साथ बिजली की चमक मंच पर दिखाई देती है जैसे बहुत तेज आंधी तूफान आया होगा बादलों की गड़गड़ाहट बिजली की चमक चमचमाहट धीरे-धीरे मंद होती है और सुबह-सुबह का वक्त है कल रात को बहुत तेज आंधी आई थी हर तरफ मिट्टी ही मिट्टी।वाणिज्य विभाग के बगीचे में कीचड़ ही कीचड़ हर तरफ मिट्टी ही मिट्टी । मंच के एक तरफ से सफाई कर्मचारी का प्रवेश व्यापार-विभाग के बगीचे में हर तरफ मिट्टी मिट्टी देखकर सफाई कर्मचारी परेशान हो जाता है और बड़बड़ाने लगता है)

सफाई कर्मचारी - धत्त तेरी की, हो गया सत्यानाश । सब मिट्टी मिट्टी हो गया। कल रात को इतनी तेज आंधी तूफान आया हर तरफ मिट्टी मिट्टी हो गई अब कल ही तो साफ करके गया फिर से सफाई करनी पड़ेगी ऊपर आसमान की तरफ इशारा करते हुए अब तो खुश है तू, कर दिया सत्यानाश हो गई तसल्ली। सारे काम पर पानी फेर दिया मुझे दोबारा सफाई करनी पड़ेगी ।

(मंच पर वर्मा जी का प्रवेश)

वर्मा जी - त कर ले , क्यों कामचोरी कर रहा है। दोबारा सफाई करने में दिक्कत क्या है।

सफाई कर्मचारी - कामचोरी की बात नहीं है साहब, इतने बड़े बगीचे में अकेले सफाई करूँगा ना तो दिक्कत तो होगी ही।

(उसके हाथ की तरफ देख कर) अरे क्या हुआ साहब ?

वर्मा जी - अरे आ रहा था एक लाठी रास्ते में पड़ी थी उसे उठा कर एक तरफ रखते हुए साला हाथ में फांस लग गया, जरा देखना।

सफाई कर्मचारी - (फांस निकालते हुए) देखो साहब बड़े साहब आएंगे और कहेंगे रामु सफाई नहीं करी अभी तक

वर्मा जी - तो बड़े साहब का क्यों इंतजार कर रहा है कर ले जल्दी-जल्दी।

सफाई कर्मचारी - बड़ा अजीब आदमी है। अपनी फांस तो निकलवा गया लेकिन हमारा काम किसी को काम नहीं दिखता है हमारे काम को आज तक किसी ने काम समझा है, कितनी बार बड़े साहब को कहा कि भरती कर लो, भरती कर लो, अकेले आदमी से इतना काम नहीं होता पूरे बगीचे की सफाई मुझे अकेले को करनी पड़ती है । अधिकारी नहीं सफाई कर्मचारी तो भरती कर लो, पर ना भरती नहीं करेंगें, अकेले आदमी को पूरा विभाग साफ करना पड़ रहा है।

वर्मा जी - अरे तेरा नहीं सब का यही हाल है मुझे देख देख दस दस लोगों काम अकेले करना पड़ता है । कम से कम तू पक्का तो है।

सफाई कर्मचारी - कमी नहीं है काम करने वालों की, एक ढूंढो पचासमिलेंगे, लाइन लगी पड़ी है । इधर-उधर भटकने से तो अच्छा है झाड़ू लगाएंगे सफाई करेंगे स्वच्छ भारत अभियान को तो आगे बढ़ाएंगे, अरे पकौड़े तलने से तो अच्छा

है, कम-से-कम बंधी बंधाई तनख्वाह तो आएगी *(बगीचे की सफाई करते करते हैं उसकी नजर जामुन के पेड़ पर पड़ती है जो रात को आई तेज आंधी में गिर गया था)*

! लो भई ये जामुन का पेड़ भी गिर गया अच्छा हुआ जो ये जामुन का पेड़ गिर गया, इसकी जामुन हर तरफ बिखरी पड़ी रहती थी और सफाई मुझे करनी पड़ती है। (बड़बड़ाते हुए फिर सफाई करने लगता हैं, सफाई करते हुए अचानक पेड़ के नीचे दबे हुए आदमी पर पड़ती हैं, अपने हाथ से झाड़ू को फेंक देता है) इसके नीचे तो आदमी दबा हुआ है *(आदमी को देखते हुए)* अरे भाई ठीक तो हो।

(दबे हुए आदमी की तरफ से कोई जवाब नहीं मिलता, अंदर ऑफिस की तरफ भागता है जोर से चिल्लाते हुए) वर्मा जी , वर्मा जी, अरे कहा मर गये।वर्मा जी वर्मा जी - क्या है क्यों सुबह-सुबह चिल्ला रहा है एक आदमी अंदर बैठकर अपना काम कर रहा है, उसे काम करने देगा कि नहीं देगा

सफाई कर्मचारी - साहब वो बाहर बगीचे में जामुन का पेड़ गिर गया है

वर्मा जी - अरे जामुन का पेड़ ही तो गिरा है। आसमान तो नहीं टूट गया। हर रोज देश का रुपया गिर रहा है, तब किसी को कोई दिक्कत नहीं होती। तू जामुन के पेड़ को लेकर चिक-चिक कर रहा है

सफाई कर्मचारी - साहब बाहर आ कर एक बार उसे उठा देते तो वर्मा जी - तेरा दिमाग ठीक है। मतलब मैं बाहर आकर अपना काम छोड़कर उस फालतू के काम में लग जाऊं। सुबह-सुबह दो झाड़ू लगाए नहीं के तू ही पीएम बन गया।

सफाई कर्मचारी - कर्मचारी गुस्से में देखो साहब गाली मत दो बी. ए. पास हूं डिग्री भी असली है फर्जी नहीं है उनकी तरह

चपड़ासी - सुबह-सुबह किस की डिग्रियां चैक कर रहे हो वर्मा जी

वर्मा जी - क्या हें हें लगा रखी है, एक पेड़ गिर गया है उसे उठाने के लिए कह रहा है

चपड़ासी - कौन सा पेड़?

वर्मा जी - जामुन का !

चपड़ासी - ओ तेरी, जामुन का पेड़ गिर गया।भाई साहब एक बात बताऊं, क्या जामुन थे .... *(बीच में बात काटते हुए सफाई कर्मचारी कुछ कहना चाहता है चपड़ासी उसे रोक देता है)*

अरे रुको भाई, भाई साहब क्या जामुन थे मैं तो कल ही थैली भर कर घर ले गया था, नमक डालकर बच्चों ने बड़े मजे से खाए।

सफाई कर्मचारी - अरे जामुनों को छोडो, उस आदमी को देखो।

सब - कौन सा आदमी?

सफाई कर्मचारी - अरे जो उस पेड़ की नीचे दबा हुआ है।

(उस आदमी की तरफ देखते सब हैरान)

वर्मा जी - अरे रामलाल जी आपने पहले नहीं बताया। (कहते-कहते पेड़ के ऊपर चढ़ जाता है)

रामलाल - मेरी सुनी है आज तक किसी ने।

वर्माजी - अरे भाई जिंदा हो या मर गए ?

चपड़ासी - अरे वर्मा जी जिसके ऊपर इतना भारी पेड़ गिर जाए और ऊपर से आप जैसा आदमी खड़ा हो जाये वो भला कैसे बच सकता है, ये तो मर गया !

आदमी - अरे मैं जिंदा हूं! *(सब हैरान, चपड़ासी उसके पास जाकर ये पक्का करना चाहता है)*

वर्मा जी - अरे डर क्यों रहे हो , आदमी है ! साँप नहीं है। आओ मिलकर इसे बाहर निकालते हैं।

सब - लेकिन निकालेंगे कैसे

वर्मा जी - इसकी टांग खींचो और बाहर निकालो चलो सब मिलकर इसे बाहर निकालते हैं

(शर्मा जी का मंच पर प्रवेश)

शर्मा जी - ये क्या घप्रोल मचा रखा है तुम लोगो ने? रामलाल जी क्या हुआ?

रामलाल - सर ये जामुन का पेड़ गिर गया।

शर्मा जी - अरे भई जामुन का पेड़ ही तो गिरा है सरकार तो नहीं गिरी

चपड़ासी - गिर सकती है

शर्मा जी - क्या सरकार

चपरासी - नहीं कुर्सी

शर्मा जी - किसकी

चपरासी - आपकी, अगर आदमी मर गया तो

शर्मा जी - कौन सा आदमी ? सभी तो जिंदा खड़े हैं

चपरासी - ये नहीं सर, वो जो पेड़ के नीचे दबा हुआ है

शर्मा जी - क्या ! अरे ये क्या हो गया। ये यह आदमी तो सचमुच गिरा हुआ है मेरा मतलब इस पेड़ के नीचे दबा हुआ है। इस पेड़ नीचे कैसे दब गया। खड़े खड़े मुँह क्या देख रहे हो जल्दी निकालो इसे।

सभी एक साथ - निकाल ही तो रहे हैं सर .

शर्मा जी– हां, हां निकालो,

(अहलावत साहब शर्मा जी को एक तरफ ले जाकर)

अहलावत साहब - सर आपको यह काम सरकारी नहीं लगता

शर्मा जी - वह कैसे ?

अहलावत - देखो सर डिपार्टमेंट किसका है?

शर्मा - सरकारी !

अहलावत साहब - यह जमीन ?

शर्मा - सरकारी!

अहलावत साहब - और हम ?

शर्मा जी - सरकारी!

अहलावत साहब - डिपार्टमेंट सरकारी, जमीन सरकारी, हम सरकारी, तो पेड़ क्या हुआ ?

शर्मा जी - सरकारी ! अरे एक मिनट रुको। क्या तुम्हें ये सरकारी काम नहीं लगता?

सभी एक साथ - सरकारी ! वह कैसे?

शर्मा जी – ये डिपार्टमेंट क्या है

सभी एक साथ - जी सरकारी

शर्मा जी - ये जमीन

सभी एक साथ - जी सरकारी

शर्मा जी -और हम

सभी एक साथ - हम भी सरकारी

शर्मा जी -तो ये पेड़ क्या हुआ

सभी एक साथ - सरकारी

(वर्मा जी चुपचाप खड़े रहते हैं,कुछ नहीं बोलते। यह देखकर अहलावत साहब उनसे पूछते हैं)

अहलावत साहब - हां भाई वर्मा तू नहीं बोलता

वर्मा जी - सर मैं तो ठेके पर हूं

शर्मा जी - मैं एक बार बड़े साहब से पूछ लेता हूं। वो क्या है ना सरकारी मामला कहीं लेने के देने ना पड़ जाए। और सिस्टम है फ़ॉलो तो करना ही पड़ेगा। तुम सब अपना काम करो मैं इस मामले को देख लूंगा और वैसे भी भाई मैं रिटायरमेंट पे बैठा हूँ।

और फिर सरकारी काम ऐसे नहीं होते।

दबा हुआ आदमी - तो फिर कैसे होते हैं

शर्मा जी - अरे भाई फाइल चलानी पड़ती है। सबसे पास करवाना पड़ता है। तू इतना आराम कर मैं बड़े साहब से जाकर पूछ कर आता हूं। वह कहेंगे निकाल दो, तो हम निकाल देंगे। हमें क्या दिक्कत होनी है, आराम कर

(शर्मा जी का मंच मंच से प्रस्थान लाइट ऑफ होती है गीत पृष्ठभूमि से उभरता है ढोलक की थाप की आवाज से पृष्ठभूमि से गीत उभरता है)

गीत

हर किसी को यहां बीमारी है
क्योंकि सिस्टम गजब सरकारी है
आज इसकी तो कल तेरी बारी है
क्योंकि सिस्टम गजब सरकारी है
खूब खाते ये खूब पीते हैं ये
जिंदगी से ज्यादा तू जीते हैं ये

(धीरे धीरे स्वर धीमा होता है मंच पर तीन अधिकारी कुर्सी लिए प्रवेश करते हैं कुर्सियों को मंच पर रहते हैं और उन कुर्सियों पर खड़े हो जाते हैं शर्मा जी पहले अधिकारी के पास आते हैं शर्मा जी पहले अधिकारी को कुछ कहते हैं पहला अधिकारी दूसरे अधिकारी के पास जाता है दूसरा अधिकारी तीसरे अधिकारी के पास जाता है तीसरा अधिकारी दूसरे अधिकारी का कुछ कहता है दूसरा अधिकारी पहले अधिकारी को कुछ कहता है इस तरह इस दृश्य का यह क्रम चलता है)

दृश्य - 2

शर्मा जी - सर, सर जी, *(जब नहीं सुनते तो जोर से चिल्लाते हैं)* सर जी

ऑफिसर एक - अरे क्या है क्यों चिल्ला रहे हो

शर्मा जी - सर,जामुन का पेड़ गिर गया

ऑफिसर एक - तो दिक्कत क्या है

शर्मा जी - सर, उसके नीचे आदमी दब गया। यही तो दिक्कत है, कुछ करो

ऑफिसर एक - अरे मैं बड़े साहब से पूछ के आता हूं

ऑफिसर दो - हैलो हां, हां हां, है

अफसर 1 - सर , सर

ऑफिसर 2 - अरे क्या हुआ

ऑफिसर 1 - सर पेड़ गिर गया

ऑफिसर 2-तो दिक्कत क्या है

ऑफिसर 1-सर, उसके नीचे आदमी दब गया। यही तो दिक्कत है, कुछ करो

ऑफिसर 2- मैं बड़े साहब से पूछ के आता हूं

ऑफिसर 2 – सर,गजब हो गया सर

ऑफिसर 3-अरे क्या हुआ

ऑफिसर 2–सर, पेड़ गिर गया सर

ऑफिसर 3-तो दिक्कत क्या है

ऑफिसर 2–सर, उसके नीचे आदमी दब गया है यही तो दिक्कत है कुछ करो सर

ऑफिसर 3-पेड़ कहां गिरा है?

ऑफिसर 2–सर, अभी पूछ कर आता हूं

(ऑफिसर 2 - ऑफिसर 1 से पूछता है)

ऑफिसर 2- अरे पेड़ कहा गिरा है

ऑफिसर 1 - अभी पूछ कर आता हूं,

(ऑफिसर 1 शर्मा जी से पूछता है)

ऑफिसर 1 - अरे पेड़ कहा गिरा है

शर्मा जी - - अपने ही बगीचे में गिरा हैसर

ऑफिसर 1- - क्या कहा आपने ही बगीचे में गिरा है, (अपने से बड़े सर को) अपने ही बगीचे में गिरा है सर,

ऑफिसर 2 - --अपने ही बगीचे में गिरा है सर

ऑफिसर 3 - अरे आदमी जिंदा है कि मर गया

ऑफिसर 2 - -सर पूछ कर आता हूं

ऑफिसर 2 - अरे आदमी जिंदा है कि मर गया

ऑफिसर 1 - पूछ कर आता हूं

ऑफिसर 1 - अरे भाई आदमी जिंदा है कि मर गया

शर्मा जी - जिंदा है साहब यही तो दिक्कत है

ऑफिसर 1 - जिंदा है सर, यही तो दिक्कत है

ऑफिसर 2 - सर ज़िंदा है यही तो दिक्कत है

ऑफिसर 3 - अरे सरकारी काम है फ़ाईल चलाओ

ऑफिसर 2 - फाइल चलाओ सरकारी काम

ऑफिसर 1 - फाइल चलाओ

शर्मा जी - सर किसकी फाइल चलाएं आदमी की या पेड़ की।

ऑफिसर 1- बड़े साहब से पूछ कर आता हूं

ऑफिसर 1 - किसकी फाइल चलाएं आदमी की या पेड़ की

ऑफिसर 2- बड़े साहब से पूछ कर आता हूं

ऑफिसर 2 - किसकी फाइल चलाएं आदमी की या पेड़ की

ऑफिसर 3 - अरे आदमी की फाइल चलती है कमबख्त

ऑफिसर 2 - अरे आदमी की फाइल चलती है कमबख्त

ऑफिसर 1 - अरे आदमी की फाइल चलती है कम्भख्त

(फिर से वही गीत शुरू होता है जो इस दृश्य के शुरुआत में बजा था धीरे धीरे नहीं तुरंत म्यूजिक भी बंद)

तीसरा दृश्य

(वाणिज्य विभागका मंच पर पत्रकार का प्रवेश)

पत्रकार - चैन से सोना है तो जाग जाइए और ना बिस्तर छोड़ कर भाग जाए और आप देख रहे हैं न्यूज़ चैनल। देर ना हो जाए तब तक ,मैं हूं, आपकी दोस्त लीशा लड़वानी। ध्यान से देखिए यही है वो जगह जहां गिरा है जामुन का पेड़ और जिसके नीचे दबा हुआ है आदमी आइए जानने की कोशिश करते हैं उसकी कहानी मेरी जुबानी मैं हूं आपकी दोस्त लिश लड़वानी

चपरासी - तूने मारी एंट्री और दिल में बजी घंटी टन टन टन। तू बम हम पटाखा आओ मिलकर करें कहीं धमाका!

पत्रकार - और मैं अपने पर आई तो पड़ेगा एक चटाका

चपड़ासी 2 - अरे खाले खाले इसी बहाने छुएगी तो सही

चपड़ासी - सच्ची

चपड़ासी2 - मुच्ची चलो अगर आप इतना कह रही हो तो मार दो

पत्रकार - खैर छोड़िए इन जैसों की आदत है लड़की देखी नहीं हो गये लट्टू आईये जानने की कोशिश करते हैं की इस पेड़ के नीचे दबे हुए आदमी को कैसा लग रहा है *(पत्रकार दबे हुए आदमी से)* तो बताइए कैसा लग रहा है आपको किस पेड़ के नीचे

दबा हुआ आदमी - अच्छा लग रहा है मैडम बहुत अच्छा लग रहा है। जुलम हुआ है किस पर ज़ालिम में कौन है यहाँ। कल सुबह अखबार में क्या खबर आएगी, यह तो आपको तय करना है।

पत्रकार - अरे सर चिंता ना करें कल के समाचार पत्रों में तो आप छाए रहेंगे तो बताइए आप यह पेड़ आपके ऊपर कैसे गिरा

दबा हुआ आदमी - हुआ कुछ ऐसा।

मैंने पेड़ को देखा,

पेड़ ने मुझको देखा,

हम दोनों में हुआ नैन मटक्का

पत्रकार – फिर

दबा हुआ आदमी - फिर पेड़ ने मुझसे पूछा

पत्रकार – क्या

दबा हुआ आदमी - की मैं तुझ पर गिर जाऊं

ओर फिर

दबा हुआ आदमी - पेड़ गिर गया।

पत्रकार - देखा आपने अभी-अभी इस आदमी ने अपने मुंह से खुलासा किया है कि ये पेड़ ऐसे वैसे नहीं बल्कि नयन मटक्के की वजह से गिरा है।

चपड़ासी - ओह मैडम कल रात को आंधी आई तूफान आया पेड़ गिर गया और आदमी दब गया। और आपको अपनी टीआरपी की पड़ी है।

पत्रकार - देखा आपने कुछ लोग यहां इस मामले को दबाने की कोशिश कर रहे हैं

चपरासी - ओ मैडम मामला दबाने की बात कैसे कर रही हैं जैसे हम यहां कोई रफाल की डील कर रहे हों। चलो भागो

पत्रकार - - देखा आपने कुछ नॉटी एलीमेंट इस मामले को दबाने की कोशिश कर रहे हैं लेकिन हम जो मामला दबने नहीं देंगे और अपनी जान को हम जान को जोखिम में डालकर आपके लिए पल-पल की खबर लेकर आते रहेगे , बने रहिये हमारे साथ। देर न हो जाये तब तक।

शर्मा जी - अरे कौन हो भाई अंदर कैसे घुस आए

पत्रकार -हम पत्रकार हैं हम अपना काम कर रहे हैं। शहर में घटना घटी है। उसकी खबर लोगों तक पहुंचाना हमारा काम है। आप हमारे सवाल का जवाब दीजिए, अभी तक यह पेड़ क्यों नहीं हटा।

शर्मा जी - देखिए प्रोसेस चल रहा है जांच कमेटी बिठा दी गयी है और जैसे ही कोई अपडेट मिलेगी हम भेज देंगे।

पत्रकार - क्या भेज देंगे।

शर्मा जी - प्रेस नोट

पत्रकार - लेकिन तब तक तो बहुत देर हो जाएगी तो अगर यह आदमी मर गया तो।

शर्मा जी- अरे हम देर करते हैं क्या, देर हो जाती है। भाई सिस्टम है, फॉलो करना ही पड़ता है उसे। सरकारी काम ऐसे नहीं होते। फाइल चलानी पड़ती है। उसे पास करवाना पड़ता है, तब कहीं जाकर कुछ बात बनती है।

पत्रकार - इस काम के लिए फाइल की क्या जरूरत है

शर्मा जी - देखिए सरकारी विभाग का अपना तरीका है काम करने का। बड़े साहब का आदेश है। चलिए चलिए बहुत हो गया और आपको हमारे आंतरिक मामले में ज्यादा दखल देने की जरूरत नहीं है । अरे तू क्या यहाँ खड़ा खड़ा मुंह देख रहा है, इन्हें यह से बाहर निकालो चलो ।

(वर्मा जी चपड़ासी पत्रकार को बाहर निकाल देते हैं।)

चपरासी - सर टाइम तो देखो चार बज गए हैं

दबा हुआ आदमी - ना फाइल का अता है ना पता है फाइल तो लापता है

चपड़ासी - और अब यह बात मीडिया को पता है अगर इसे कुछ हो गया ना तो आपकी नौकरी तो गई

वर्मा जी - सर आपकी नौकरी तो पक्की थी।

शर्मा जी - तू ज्यादा होशियार मत बन, अंदर जा और फाइल तैयार कर ले। याद रख कॉन्ट्रैक्ट है पक्का भी होना है ।

वर्मा जी - एक बात कहूं फ़ाइल चलानी जरूरी है क्या, हम मिलकर हटा देते हैं दो चार लोग बाहर से आ जाएंगे हम लेकिन ये जो कुछ हो रहा है ठीक नहीं हो रहा

शर्मा जी - तू चुप कर

वर्मा जी - सर मैं तो चुप हो जाऊंगा लेकिन

दबा हुआ आदमी - सर यह ठीक कह रहा है दो चार लोगों को बुलाकर इस पेड़ कटवा दो ना

शर्मा जी - देख भाई हम कर तो रहे हैं काम , भाई हमारी मजबूरी भी तो समझ। सरकारी काम ऐसे नहीं होते।

दबा हुआ आदमी - तो कैसे होते हैं सर?

शर्मा जी - भाई फाइल चलानी पड़ेगी, उसे पास करवाना पड़ेगा ! देख अगर तू फंसा हुआ है न, तो भाई हम भी फंसे हुए हैं । फर्क इतना है कि, तू पेड़ के नीचे फंसा हुआ है और हम इस सिस्टम के अंदर फंसे हुए हैं।सिस्टम तो फॉलो करना ही पड़ेगा। बड़े साहब का आर्डर मिल गया है ।

दबा हुआ आदमी - पेड़ हटाने का

शर्मा जी - नहीं , फ़ाइल चलाने का। देखो वर्मा जी अगर यह आदमी निकल गया तो हम नौकरी से निकल जाएंगे ।फंसा हुआ है तब तक ठीक है ज्यादा इसके चक्कर में मत पड़। इसका तो आर्डर आ गया ऊपर से । फाइल चलानी है इसमें ना तू कुछ कर सकता ना मैं कुछ कर सकता अब जो कुछ होगा वो ये फ़ाइल ही करेगी। समझ गया,बाकी तेरी मर्जी। तू तो कॉन्ट्रैक्ट पे है, आज है कल नहीं। भाई मेरी नौकरी के तो दोसाल बचे हैं । मैं कोई रिस्क लेना नहीं चाहता बाकी तेरी मर्जी। उठाना चाहे तो अकेला उठा या दस लोगों को बाहर से बुला ले, मुझे कोई दिक्कत नहीं भाई। कल को कोई दिक्कत होती है, तो मुझे न बताइए।

(वर्मा यह बात सुनकर जैसे ही पैर को हटाने की कोशिश करता है तो सोचने लगता है, और एकदम रुक जाता है। शर्मा जी से)

वर्मा जी - ठीक है सर में अंदर जाकर फाइल तैयार कर देता हूं जहा इतनी फाइल चल रही हैं वह एक और सही।

अब जो होगा देखा जाएगा

दबा हुआ आदमी - सर प्लीज मुझे यहां से निकाल दो। मुझे सरकारी चक्कर में मत डालो। बाहर से किसी गाड़ी को बुलाकर ट्रैक्टर वाले को बुलाकर ट्रेन वाले को बुलाकर इस पेड़ को हटवा दो ।

शर्मा जी - देख भाई हम सिस्टम से ऊपर होकर कुछ नहीं कर सकते जो कुछ करेंगे सिस्टम के अंदर ही करेंगे। अरे तू चिंता क्यों करता है आज फाइल चलेगी कल पास हो जाएगी। मैंने तेरी फाइल चलवा दी है वह भी एकदिन में।

(संगीत के साथ मंच पर फाइल का प्रवेश पीछे-पीछे चपरासी संगीत के साथ)

चौथा दृश्य

(कृषि अधिकारी का मंच पर प्रवेश)

कृषि अधिकारी - तो यह वह महाशय है जिन्होंने यह लेखीय-पत्र हमारे विभाग में भेजा है।

शर्मा जी - लेखीय-पत्र मतलब, वर्मा जी फाइल फाइल,शर्मा जी अच्छा अच्छा मतलब फाइल यह फाइल हमने आपके आपके विभाग में भेजी है बोलिए।

अधिकारी - अच्छा तो आप हैं श्रीमान आपने यह फाइल हमारे विभाग में क्या सोच कर भेजी जरा बताएंगे यह बताने का कष्ट करेंगे।

शर्मा जी - लेकिन हमने आपके विभाग में यह सोच कर भेजी यह काम आपका है हमारा नहीं।

कृषि विभाग - श्रीमान आप हमारे प्रश्न का उत्तर दीजिए यह वृक्ष किस के प्रांगण में गिरा ?

शर्मा जी - प्रांगण ?

वर्मा - प्राईमिसिस ऑफ लॉन

शर्मा जी - अच्छा! बगीचा ठीक, श्रीमान यह वृक्ष हमारे प्रांगण में गिरा है!

कृषि अधिकारी - अगर यह वृक्ष आप के प्रांगण में गिरा है तो,यह समस्या किसकी हुई ?

शर्मा जी - यह समस्या आपकी आपकी हुई।

कृषि अधिकारी - श्रीमान! यह समस्या हमारी कैसे? जब ये वृक्ष आप के प्रांगण में गिरा है, तो यह समस्या भी आपके हुई। शर्मा जी - वाह! वाह ! जी वाह! कमाल है पेड़ लगाओ तुम और कटवाएं हम।

कृषि अधिकारी - देखिए श्रीमान आप हमें यह क्रोधित ना करें अगर हमारे सब्र का बांध टूट गया तो...

वर्मा जी - हां तो!

चपरासी - फाइल से फाइल बज जाएगी!

कृषि अधिकारी - *(हंसते हुए)* देखिए श्रीमान आप तो व्यर्थ में ही क्रोधित हो गए आप हमारे कहने का तात्पर्य तो समझे ही नहीं।

वर्मा जी - ओ तात्पर्य की मूर्ति। अपने हिंदी शब्दकोश को थोड़ा विश्राम दो,और सीधे-सीधे यह बताओ कि पेड़ कैसे हटेगा।

कृषि अधिकारी -वही !वही! अरे भई उसी समस्या का समाधान आपके समक्ष प्रस्तुत करने आया हूं।

वर्मा जी – ये फालतू की बकवास छोड़ो और यह बताओ पेड़ कैसे हटेगा।

कृषि अधिकारी - अरे वर्मा जी जरा रुकिए और हमारे प्रश्न का उत्तर दीजिए। आप हमें यह बताइए यह वृक्ष किस चीज का है ?

शर्मा जी - जामुन का।

कृषि अधिकारी - यही तो जामुन का। यानी के एक फलदार वृक्ष। कुछ समझे शर्मा जी।

यह समस्या ना आपकी है और ना हमारी , यह समस्या तो फल विभाग की है आप क्यों व्यर्थ की चिंता करते हैं । आप तुरंत इस फाइल को अत्यंत आवश्यक लिखकर फल विभाग पहुंचा दीजिए, और पल्ला झाड़िये इस मुसीबत से क्यों व्यर्थ की चिंता करते हैं।

शर्मा जी - वाह! श्रीमान जी, बड़ा दिमाग दौड़ाया है।

वर्मा जी - सर शक्ल से ही पागल लगते हैं, दिमाग तो है।

कृषि अधिकारी - क्या कहा ?

वर्मा जी - जी कुछ नहीं कुछ नहीं।

दबा हुआ आदमी - लेकिन मुझे तो यहां से निकाल दो।

शर्मा जी - ना ना! ऑफिस के सारे काम छोड़ कर तेरे काम पर लगे हुए हैं। देख हमने एकदिन में तेरी फाइल कृषि विभाग पहुंचा दी है।

चपरासी - हा वरना कई लोगों की फाइल तो सालों साल पेंडिंग पड़ी रहती है।

शर्मा जी - चुपकर कम्बख्त।

कृषि अधिकारी - देखिए श्रीमान अगर आप कहे तो इनकी सेहत के संदर्भ में हमारे पास एक सुझाव है कहो तो प्रस्तुत करुं। श्रीमान आप चिंता ना करे,आपकी समस्या का भी समाधान है हमारे पास, आप बस लेटे-लेटे अनुलोम-विलोम करते रहिए इसी बहाने आपकी सेहत भी सही रहेगी। और सांसे भी चलती रहेगी

चपरासी - फाइल चले ना चले सर,सांसे चलती रहनी चाहिएं

शर्मा जी - चुपकर कमबख्त इस फाइल को फल विभाग पहुंचा दो।

गीत

हो तेरी चलने से पहले हाय रे तेरी फाईल
रुक जाती है , रुक जाती है।
ये देर करते नहीं , देर हो जाती हैं
देर ना हो जाए कहीं देर ना हो जाये
आजा रे इसका मन घबराए

देर ना हो जाये कहीं देर ना हो जाये
तेरे वादे इरादे, इस सिस्टम के आगे झुक जाते है
ये देर करते नहीं देर हो जाती है ।

पांचवां दृश्य

फल विभाग -कमाल हैं इस वक़्त तो हम पेड़ लगाओ अभियान चला रहे हैं । और ये लोग पेड़ काटने की बात कर रहे हैं। वो जामुन के पेड़ को जिसके आम फल जनता बड़े चाव से खाती हो। और ऐसे पेड़ को हम काटने की अनुमति कतई नहीं दे सकते। अरे शर्म आनी चाहिए, इस काम के लिए , अगर ये पेड़ काट गया तो धरने होंगे, प्रदर्शन होंगे, भूख हड़ताल होगी और इन सब की ज़िम्मेदारी तुम्हारी ।

(फल विभाग अधिकारी का प्रस्थान)

शर्मा जी - अरे श्रीमान ठहरिए। वर्मा जी, ये कौन थे जो अपनी कह गए हमारी तो सुनी ही नहीं।

वर्मा जी - सर आजकल मन की बात कहने का रिवाज़ है, सुनने का नहीं।

शर्मा जी - वर्मा वो फॉइल पूरी कर दी । याद रख कॉन्ट्रैक्ट पे हैं, पक्का भी होना है।

चपरासी जो फाइल को एक दफ्तर से दूसरे दफ्तर लेकर जा रहा है बहुत परेशान हो जाता है कॉल को हटाने की नए नए तरीके से लगता है इधर से उधर उधर से शर्मा जी खड़े खड़े देख रहे हैं और जोर से पूछते हैं क्या हुआ

छठा दृश्य

चपड़ासी - सर मेरे पास एक आईडिया है।

शर्मा जी - मेरे पास जियो है।

वर्मा जी - मेरे पास एयरटेल है।

शायर - मेरे पास बी एस एन एलहै।

शर्मा जी - तभी तो गिरा हुआ है।

चपरासी - सर अगर आपका बैलेंसखत्म हो गया है तो में कुछ करूं । अरे सर मेरे कहने का मतलब देखिए सर हम इस पेड़ को तो नहीं कर सकते ना कोई बात ही नहीं हम इस आदमी को बीच में से काट लेते है।

शर्मा जी - वह कैसे

चपड़ासी - देखिए सर हम एक आरी लेंगे ठीक बीच में से खच-खच खच-खच,आधा आदमी यहां से, आधा आदमी वहां से निकाल लेंगे इसके दो फायदे होंगे एक तो आदमी बाहर निकल जाएगा दूसरा पेड़ को भी कोई नुकसान नहीं होगा।

शायर - लेकिन ऐसे तो मैं मर जाऊंगा।

शर्मा जी - बात तो इसकी भी ठीक है।

चपरासी - अबे पागल।

शर्मा जी - क्या कहा।

चपरासी - अबे पागल, मरना तो तुझे है, अपाहिज की मौत मर कर क्या फायदा। इससे अच्छा है संघर्ष करके मर और वैसे भी हमारी मेंडिकल साइंस बहुत तरक्की कर कर ली है वी आर डेवेल्प कंट्री इन द फील्ड ऑफ सांइस।

आप चिंता मत करें आप तुरंत डॉक्टर को बुलाइए, ऑपरेशन करवाइए हम प्लास्टिक सर्जरी से आधा आदमी यहां से आधा आदमी यहां से लेंगे और यूं जोड़ देंगे, बिल्कुल गणेश जी की तरह,समझे । तुरंत इस फाइल को मेडिकल डिपार्टमेंट पहुंचवा दो।

शर्मा जी - क्या कहा।

चपरासी - मतलब मैं पहुंचा देता हूं।

(चपरासी फाइल को मेडिकल डिपार्टमेंट पहुंचा देता है और शाम को को डॉक्टर मेडिकल डिपार्टमेंट से घटनास्थल पर पहुंचता है और मौके का मुआयना करता है)

डॉक्टर - हेलो डॉक्टर।

वर्मा जी - यहां कोई डॉक्टर नहीं है।

डॉक्टर - *(शर्मा जी से)* हेलो डॉक्टर।

शर्मा जी - अरे तुम्हे कहा तो है यहां कोई डॉक्टर नहीं है चलो

डॉक्टर - आप गलत समझ गए, मैं डॉक्टर हूं, मैं डॉक्टर हूं

शर्मा जी - अच्छा, अच्छा । तो तुम डॉक्टर हो। एक बात तो बताओ अगर तुम डॉक्टर हो तो मरीजों का क्या होता होगा।

दबा हुआ आदमी - वही होगा जो मंजूरे खुदा होगा।

डॉक्टर - वाह !वाह वाह! वाह काफी अच्छा काफी अच्छी शेरो शायरी करते हैं ।आपकी बात पर एक बात हम भी कह दे। यहाँ खुदा है वहां खुदा ऐ खुदा यह बता गड्ढा कहां-कहां नहीं खुदा

(सभी वाह-वाह करते हैं)

शर्मा जी - यह फालतू की शायरी छोड़ो और मरीज को देखो।

डॉक्टर - मरीज है कहां।

शर्मा जी - जिसके साथ बैठकर आप मुशायरा कर रहे हैं वही मरीज है।

डॉक्टर - अच्छा अच्छा, तो यह मरीज है। देखिए सर ब्लड प्रेशर चेक करना पड़ेगा, हार्ट बीट चेक करनी पड़ेगी, ऑपरेशन करने से पहले आदमी मर गया तो।

शर्मा जी - तो कीजिए ना

(डाक्टर दबे हुए आदमी के बाएं पैर को उठाता है और अपने कान से लगाता है)

डाक्टर - वाह ब्लड प्रेशर ठीक है,अब इसके हार्ट बीट चेक करनी पड़ेगी। (वर्मा जी से कहते हुए) सर उसका हाथ उठाओ।

(जैसे ही वर्मा दबे हुए आदमी का हाथ उठाता है डॉक्टर अपना सिर उसके सीने में घुसा देता है जैसे ही वह अपने सीने में सारा का सारा वजन उसके सिर पर आ जाता है जिससे वह चिल्लाने लगता है और सभी मिलकर उसकी टांग पकड़ कर खींच लेते हैं)

वर्मा जी - अच्छा हुआ सर इसे खींच लिया नहीं तो उसकी फाइल चलानी पड़ती।

डॉक्टर - थोड़ा होश में आता है बोलता है। देखिए हार्टबीट तो ठीक है। ब्लड प्रेशर भी ठीक है । लेकिन आदमी बड़ा वजनदार है । ऑपरेशन हो जाएगा सफल भी हो जाएगा, लेकिन

शर्मा जी - लेकिन।

डॉक्टर - आदमी मर जायेगा

वर्मा जी - तुम डॉक्टर हो

शर्मा जी - पीकर आए हो

डॉक्टर - नहीं, मंगा लो, यहीं बैठ कर पी लेंगे

शर्मा जी - आगरा के पागलखाने से आया है?

(वर्मा जी से) बाहर निकालो एक फाइल पूरी हुई नहीं दूसरी तैयार बैठी है।

सातवां दृश्य

पत्रकार - आप सभी का स्वागत है हमारे नए शो, देर ना हो जाए तब तक! जैसा कि आप जानते हैं कि वाणिज्य विभागके आंगन में पेड़ गिरा हुआ है औरउसके नीचे एक आदमी दबा हुआ है, आज उस आदमी का दबे हुए दूसरा दिन है,लेकिन अभी तक उस पेड़ के नीचे से निकल नहीं पाया है। अब इस मुद्दे ने एक राजनीतिक रूप ले लिया है।क्या वह आदमी उस पेड़ के नीचे से निकल पाएगा, निकल पाएगा तो कैसे। इन्हीं सवालों के जवाब ढूंढने के लिए आज हमारे साथ हमारे कुछ एक्सपर्ट हमारे स्टूडियो मौजूद हैं जो इसी बात पर चर्चा करेंगे। (और आप लोग भी बने रहिए हमारे साथ पल-पल की खबरों के लिए देर ना हो जाए तब तक। आप लोगों के लिए एक सवाल, क्या वह पेड़ के नीचे निकल पाएगा। आप हमें अपना जवाब भेज सकते हैं खबर नंबर नोट कीजिए 51, 52, 53)

पत्रकार - हमारे बीच मौजूद है झाड़ी वाले बाबा जिन्हें एक तरह से प्रकृति प्रेमी कहा जाता है सबसे पहले हम उन्हीं से जानने की कोशिश करते हैं नमस्कार झाड़ी वाले बाबा हमारी स्टूडियो में स्वागत है सबसे पहले हम आप से ही कमेंट चाहते हैं इस घटना पर।

बाबा - देखिए सबसे पहले तो मैं आपका ध्यान इस बात की और दिलाना चाहता हूं असल में वह पेड़ जामुन का पेड़ वह है ही नहीं।

खुरजेवाला-अरे कैसी बातें करते हैं।

झाड़ी वाले बाबा - अरे भाई कैसी बातें करते हो, जरा सुन तो लो। यह सिर्फ जामुन का पेड़ नहीं हैं। यह हमारी संस्कृति और सभ्यता का प्रतीक भी है। इस पेड़ को काटने का मतलब है हमारी सभ्यता और संस्कृति को काटना।

पत्रकार - और वो आदमी ।

बाबा - देखिए उस आदमी से मुझे पूरी हमदर्दी है। पर मुझे बड़ा अफसोस है हम आदमी को निकालने की बजाय पेड़ को काटने की बात कर रहे हैं, जो हमारी सभ्यता संस्कृति का प्रतीक है। अगर इस पेड़ को काटा गया तो हम अपने समर्थकों के साथ यहां धरना प्रदर्शन करेंगे ।

विपक्ष का नेता - देखिए पत्रकार महोदय हमें कुछ बोलना है।

लंबित यात्रा- अरे आप क्या बोलेंगे आप तो कुछ बोलने लायक हैं ही नहीं हम बाबाजी की बात से पूरी तरह सहमत हैं। नेता विपक्ष - कुछ कहना चाहते हैं।

लंबित यात्रा - जरा धैर्य रखें।

नेता विपक्ष - हट बुड़बक ससुरा। हम को तो कछु बोलने ही नहीं दे रहा । तो हम जा रहे हैं।

लंबित यात्रा जी - हां हां, जाइए जाइए। आपकी तो मैदान छोड़ने की आदत जो है। डिबेटमें आए हैं थोड़ा सब्र कीजिए।

नेता विपक्ष - शांति रखना सिखा रहे हैं। हमारे सब्र का इम्तिहान ले रहे हैं। ठीक है हम भी आज आपकी सारी की सारी बकवास सुनकर ही जाएंगे कहिए कहना चाहते हैं।

लंबित यात्रा जी - देखिए आपका ध्यान इस बात पर दिलाना चाहता हूं ये लोग किसी को काम करने नहीं देते। याद कीजिए जब आप की सरकार थी और आप की सरकार में भी एक पेड़ गिरा था और उस पेड़ नीचे एक मासूम जानवर पेड़ के नीचे दब गया था। जानवर के बारे में जिक्र नहीं करना चाहता कि वह जानवर एक गाय थी ना।बिल्कुल नहीं । मैं जानता हूं हमारे कुछ साथी इस डिबेट को दूसरी तरफ मोड़ देंगे। मैं बिल्कुल नहीं कहना चाहता वह जानवर पूरा एक घंटा पैंतालीसमिनट पेड़ के

नीचे दबा रहा इन लोगों ने उसे निकालने का जरा सा भी प्रयास नहीं किया। आखिर में थक हार कर वो जानवर अपने दम पर उस पेड़ के नीचे से निकला।

नेता विपक्ष - अरे लंबित यात्रा जी ,आप को इतिहास की जानकारी तो है नहीं, कम से कम इस घटना की जानकारी तो ठीक ढंग से ले आते। अरे वह जानवर उस पेड़ के नीचे दबा नहीं था बल्कि उस पेड़ के नीचे से पत्तियां खाने के लिए गया था। चलो हम एक मिनट के लिए मान भी लेते हैं की वो जानवर ... *(बात को बीच में काट कर)*

बाबा जी – देखा, कैसे ये हमारी गाय माता का अपमान कर रहा है।

लंबित यात्रा - मुद्दे को भटकाने में तो ये लोग माहिर हैं।

नेता विपक्ष - ठीक वो गाय...

(फिर बात काट देते हैं)

बाबा जी - कैसे ये हमारी आदरणीय गाय माता का अपमान कर रहा है।

नेता विपक्ष- परेशान हो कर ठीक है वो तुम्हारी श्री श्री 1008 आदरणीय गाय माता (बाबा जी की तरफ देखते हुए)वो पत्तियां खाने नहीं बल्कि उस पेड़ के नीचे दब गई। तो मैं ये पूछना चाहता हूं इन *(लंबित की तरफ इशारा करते हुए)* की जब वो गाय एक घंटा पैंतालीस मिनट उस पेड़ के नीचे दबी रही तो आप वहां खड़े खड़े एकघंटे पैंतालीसमिनट तक खड़े खड़े घंटा बजा रहे थे बाबा जी की तरह। तुमने क्यों नहीं निकाली।

लम्बित यात्रा- - देखिए इस वक्त हम विपक्ष में थे और हमारा काम उस पेड़ को हटाना नहीं था सरकार को जागरुक करवाना था।

बाबा जी - देखिए पत्रकार महोदय, मुझे इनके शब्दों पर आपत्ति है।

नेता विपक्ष - वाह बाबा जी, आपको कब से आपत्ति होने लगी , आपको तो लोगों की समाप्ति से मतलब है।

बाबा जी - इनसे कहिए ये अपने शब्दों को वापिस लें अन्यथा इन्हें हमरा क्रोध झेलना पड़ेगा। उन्होंने इस शब्द का इस्तेमाल किया बाबाजी की तरह घंटा बजा रही थी। यह घंटी भी तो कह सकते थे हमने आजतक कभी घण्टा नहीं बजाया। हमारे आश्रम में तो छोटी छोटी घण्टियां हैं बस उन्हें बजाते हैं। ये देशद्रोह हैं इन्हें माफी मांगनी होगी।

(स्टूडियो में झगड़ा शुरू हो जाता है)

गीत

कल नुमाइश में मिला , वो चिथड़े पहने हुए
मैंने पूछा नाम तो बोला के हिंदुस्तान हैं
वो आदमी मि नहीं मुक्कमल बयां हैं
माथे पे उसके चोट का गहरा निशान हैं
वो आदमी...

(गीत धीमा पड़ता है,मंच पर शायर जो पेड़ के नीचे दबा हुआ है उस पर लाइट फोकस होता है)

आठवां दृश्य

दबा हुआ आदमी - अरे कोई पानी तो पिला दो, कोई सुन रहा है क्या।भाई कोई पानी तो पिला दो। पेड़ नहीं हटा सकते तो कोई बात नहीं कम-से-कम पानी तो पिला दो। अरे कोई सुन रहा है भाई, अरे जरा पानी तो पिला दे। क्या हो गया है दुनिया को कितने मतलबी हैं लोग। अरे कोई पानी तो पिला दो। माली भागा भागा आता है हाथ में पानी का गिलास शायर को पानी पिलाता है।

रामलाल - *(दुखी मन से)* अरे कौन है भाई, तू कहां से आया है। तेरी जान मुसीबत में कैसे फंस गई।

दबा हुआ आदमी - क्या बताऊं भाई किसी काम से ऑफिस आया था काम करवा कर जा ही रहा था । तेज बारिश होने लगी खूब जोर से आंधी चलने लगी । आंधी तूफान से बचने के लिए इस पेड़ के नीचे खड़ा हो गया। लेकिन मैं नहीं जानता था जिसे मैं अपना सुरक्षा कवच समझ रहा हूं वही मुसीबत का कारण बनेगा। अचानक यह पेड़ मेरे ऊपर गिर पड़ा।

रामलाल - अच्छा हुआ, यह पेड़ तेरे कुल्हे पे गिरा है, अगर कमर पर गिर जाता तो रीड की हड्डी टूट जाती । अच्छा यह बता, शहर में कोई जानने वाला सगा संबंधी है अगर है तो बता दे मैं उन्हें खबर पहुंचा दूंगा। देख यह सरकारी मामला है । तू नहीं जानता बिना रिश्वत लिए यह अपने बाप का काम भी नहीं करते। है तो बता दे उन्हें खबर कर दूंगा।

दबा हुआ आदमी - मैं लावारिस हूं।

रामलाल - अच्छा फिर तो तेरा भगवान ही मालिक है भाई। चल तू आराम कर ले। मैं तेरे लिए खाना ले कर आता हूं, कुछ खा ले । तू चिंता मत कर तेरी फाइल चल रही है कल तक पास हो ही जाएगी।

दबा हुआ आदमी - फाइल तो बहुत चलती हैं। साहब और उन्हें चलाते हैं। कुर्सी पर बैठे हुए लोगों, मुझे कुर्सी पर बैठे हर आदमी का चेहरा एक जैसा दिखता है एक ही चेहरा लगता है जैसे एक ही आदमी की रूह बैठी हो देश की तमाम कुर्सियों पर। चलाती है फाइलों पर फाइल । कौन सी फाइल कब पास होगी यह बस खुदा ही जाने।

रामलाल - क्या तुम शायर हो।

दबा हुआ आदमी - हां भाई मैं शायर हूं।

रामलाल - चल कोई बात नहीं तू आराम कर। मैं तेरे लिए खाना ले कर आता हूं।

(रामलाल खाना लेने जाता है वापस आता है तो देखता है शायर सो रहा है खाने की प्लेट उसके सिर के किनारे रख कर अपने आप से कुछ मन ही मन कहता है)

रामलाल - अच्छा ही हुआ जो यह सो गया कल से परेशान था। थोड़ा आराम कर लेगा। एक बात कहूं हमारे देश का सिस्टम भी इस पेड़ की तरह गिरा हुआ है। उसे उठाने वाला कोई नहीं , हां हां तमाशा देखने वाले बहुत है। चलो जो होगा भगवान भरोसे फाइल देखते हैं कब पास होती है।

(परी बनकर फाइलों का मंच पर प्रवेश और सपनों का क्रम)

दबा हुआ आदमी - तुम कौन हो

परी - मैं तुम्हारी फाईल हूं

दबा हुआ आदमी - क्या तुम पास ही गई ।

परी - नहीं, लेकिन में पास होना चाहती हूं। तुम्हारे पास आना चाहती हूँ। लेकिन इस कम्बख्त सिस्टम में फंस गई हूं। कभी इसके हाथ तो कभी उसके हाथ , ना जाने कैसे कैसे हाथों और कैसी कैसी नज़रों से गुजरना पड़ता है। कोई समझेगा दुख मेरा । पर तुम चिंता ना करो मैं पास हो जाऊंगी तुम्हारे पास आ जाऊंगी।

दबा हुआ आदमी - कैसे कह दूं के उन्हें मेरी फिक्र नहीं

वक़्ते दफन ही सही वो आए तो

परी - क्या तुम शायर हो

दबा हुआ आदमी - हां, मैं शायर हूं।

सभी परी - ये शायर है, ये शायर है।

(आफिस का दृश्य)

शर्मा जी - अरे वर्मा, हम कितने गधे हैं।

वर्मा - हां, सर गधे हैं!

शर्मा जी - हम कितने पागल हैं।

वर्मा - हां सर पागल हैं। लेकिन सर हुआ क्या।

शर्मा जी - अरे इसका संबंध ना तो एग्रीकल्चर से है और ना ही हॉर्टिकल्चर से । इसका सम्बद्ध तो कल्चर से है।

वर्मा जी - वो कैसे सर

शर्मा जी - ये एक शायर है। तुम तुरन्त इसकी फाइल को कल्चरल विभाग पहुचा दो।

वर्मा जी - अरे भाई साहब आपने पहले नहीं बताया,हम तो ऐसे ही बोर हो रहे थे ।

दबा हुआ आदमी - मैं भी कभी कभी लिखा करता था। दो चार लाइनेंआपके सामने रखता हूं, आपकी समालोचना चाहता हूं। अर्ज़ किया है।

तुम आगे आगे चलो
में पीछे पीछे आता हूं

वर्मा - तुम...

(शर्मा जी वर्मा की बात को बीच में ही काटते हुए)

शर्मा जी - वर्मा वो फॉइल पूरी करदी ।

वर्मा जी - सर कर रहा हूं ।

शर्मा जी – *(धमकाते हुए)* वर्मा तुम आगे-आगे चलो,मैं पीछे आता हूं

कल्चरल ऑफिसर - क्या आप शायर हैं। क्या नाम है तुम्हारा।

दबा हुआ आदमी - ओस।

ऑफिसर - क्या तुम वही ओस हो जिनका काव्य-संग्रह ओस के फूल प्रकाशित हुआ था।

दबा हुआ आदमी - जी हां में वही हूं।

ऑफिसर - क्या तुम हमारी अकादमी की सदस्य हो।

दबा हुआ आदमी - जी नहीं।

ऑफिसर - *(चिल्लाकर)* सेक्रेटरी । इस आदमी को तुरंत हमारी अकादमी का सदस्य घोषित करो । और इनके सम्मान में सांस्कृतिक संध्या आयोजित करो।

(संगीत उभरता है और मंच पर मुखौटे पहने सभी कलाकार उपस्थित होते हैं बिल्कुल एक रंगारंग कार्यक्रम की शुरुआत होती है और सब नाचते गाते जश्न मनाते हुए शायर को उनके एकेडमी के सदस्य होने का प्रमाण पत्र देते हैं और सभी मिलकर उसके साथ सेल्फी लेते हैं)

ऑफिसर - बधाई हो तुम हमारे सदस्य बन गए हो।

दबा हुआ आदमी -लेकिन मुझे तो यहाँ से बाहर निकल दो।

ऑफिसर -देखिए वो काम हमारा नहीं है। हम आपकी फाइल को वन विभाग पहुचा देंगे, वो आकर इस पेड़ को काट

(मंच पर वन विभाग के अधिकारी का प्रवेश शेरो शायरी में)

वन विभाग- इसकी फाइल कहीं पंहुचाने की जरूरत नहीं हमें खबर लग चुकी है। आप लोग इस पेड़ को नहीं काट सकते। ये पेड़ अमेरिका के राष्ट्रपति ने अपने हाथों लगवाया था। अगर ये पेड़ काटा गया तो हमारे विदेशों से संबंध खराब हो सकते हैं। एक तो हमारे प्रधान सेवक विदेशों से संबंध स्थापित करने के लिए हर तीसरे दिन विदेश यात्राओं पर रहते हैं ऐसे समय इस पेड़ को काट कर हम विदेशों से अपने अंतर्राष्ट्रीय संबंधों में बिगाड़ नहीं कर सकते।फिर देश के लिए अगर क़ुर्बान होता है तो ये गर्व की बात है।

दबा हुआ आदमी - हम तो कुर्बान हो जाएंगे साहब, लेकिन बड़े साहब को खबर तक नहीं होगी। कौन होगा मेरी मौत का जिम्मेदार।ये जामुन का पेड़ या ये सिस्टम या सिस्टम को चलाने वाले ये लोग। फाईलें चलती रहती हैं, फाईलें चलती रहती हैं। अरे चंद फाइलों में क़ैद हैं हम इंसानों की जिंदगियां और कौन सी फाइल कब पास हो ये खुद जाने।

(शायर मर जाता है)

कल नुमाइश में मिला , वो चिथड़े पहने हुए
मेंने पूछा नाम तो बोला के हिंदुस्तान हैं
वो आदमी मि नहीं मुक्कमल बयां हैं
माथे पे उसके चोट का गहरा निसान हैं
वो आदमी...

चपड़ासी - सर ये बड़े साहब का आदेश आया है, इस पेड़ को हटाने का।

माली - मेहरबां बहुत देर करदी आते आते । इसकी फाइल तो कब की पास हो गई।

(संगीत उभरता है और मंच पर मुखौटे पहने सभी कलाकार उपस्थित होते हैं बिल्कुल एक रंगारंग कार्यक्रम की शुरुआत होती है और सब नाचते गाते जश्न मनाते हुए शायर को उनके एकेडमी के सदस्य होने का प्रमाण पत्र देते हैं और सभी मिलकर उसके साथ सेल्फी लेते हैं)

ऑफिसर - बधाई हो तुम हमारे सदस्य बन गए हो।

दबा हुआ आदमी - लेकिन मुझे तो यहाँ से बाहर निकल दो।

ऑफिसर - देखिए वो काम हमारा नहीं है। हम आपकी फाइल को वन विभाग पहुचा देंगे, वो आकर इस पेड़ को काट

(मंच पर वन विभाग के अधिकारी का प्रवेश शेरो शायरी में)

वन विभाग- इसकी फाइल कहीं पंहुचाने की जरूरत नहीं हमें खबर लग चुकी है। आप लोग इस पेड़ को नहीं काट सकते। ये पेड़ अमेरिका के राष्ट्रपति ने अपने हाथों लगवाया था। अगर ये पेड़ काटा गया तो हमारे विदेशों से संबंध खराब हो सकते हैं। एक तो हमारे प्रधान सेवक विदेशों से संबंध स्थापित करने के लिए हर तीसरे दिन विदेश यात्राओं पर रहते हैं ऐसे समय इस पेड़ को काट कर हम विदेशों से अपने अंतर्राष्ट्रीय संबंधों में बिगाड़ नहीं कर सकते। फिर देश के लिए अगर क़ुर्बान होता है तो ये गर्व की बात है।

दबा हुआ आदमी - हम तो कुर्बान हो जाएंगे साहब, लेकिन बड़े साहब को खबर तक नहीं होगी। कौन होगा मेरी मौत का जिम्मेदार। ये जामुन का पेड़ या ये सिस्टम या सिस्टम को चलाने वाले ये लोग। फाईलें चलती रहती हैं, फाईलें चलती रहती हैं। अरे चंद फाइलों में क़ैद हैं हम इंसानों की जिंदगियां और कौन सी फाइल कब पास हो ये खुद जाने।

(शायर मर जाता है)

कल नुमाइश में मिला , वो चिथड़े पहने हुए
मेंने पूछा नाम तो बोला के हिंदुस्तान हैं
वो आदमी मि नहीं मुक्कमल बयां हैं
माथे पे उसके चोट का गहरा निसान हैं
वो आदमी...

चपड़ासी - सर ये बड़े साहब का आदेश आया है, इस पेड़ को हटाने का।

माली - मेंहरबां बहुत देर कर दी आते आते । इसकी फाइल तो कब की पास हो गई।

□□

क्रांतिकारी चिंतक थे जोतिबा फुले

□ सुभाष गाताड़े

सुभाष गाताडे की हाल में ऑथर्स प्राईड पब्लिशर प्रा. लि. द्वारा प्रकाशित किताब 'चार्वाक के वारिस पुस्तक प्रकाशित हुई है। यह किताब भारत के समाज, संस्कृति और सियासत से रूबरू होने की एक कोशिश है। पहले भाग में भारतीय राजनीति में अतार्किक, असमावेशी, असहिष्णु एवं असमानतामूलक राजनीति की जड़ों की भारतीय समाज, संस्कृति में पड़ताल की गई है। किताब के दूसरे भाग में भारत की जाति समस्या तथा उसके उन्मूलन के रास्ते की चुनौतियों की चर्चा की गयी है। तीसरे भाग में बहुसंख्यकवाद की चुनौती से रूबरू होते हुए यह देखने की कोशिश है कि उपनिवेशवाद के दिनों में उभरी राजनीतिक आज़ादी एवं सामाजिक मुक्ति की धारा में इस खतरे का कितना एहसास था और उसके दूसरे अध्याय में सामाजिक मुक्ति के प्रतीकों को यथास्थितिवादी ताकतों द्वारा समाहित किए जाने के सिलसिले पर रोशनी डाली गयी है। किताब के चौथे भाग में डा. दाभोलकर के हिंदी में प्रकाशित तीन किताबों की समीक्षा प्रस्तुत की गयी है। प्रस्तुत है इसका एक अंश-

विद्या बिना मति गई,
मति बिना गति गई,
गति बिना नीति गई,
नीति बिना वित्त गई
वित्त बिना शूद्र चरमराये,
इतना सारा अनर्थ
एक अविद्या से हुआ
-गुलामगिरी

जिन मानदण्डों के आधार पर हम सामाजिक मुक्ति के बारे में इन तीनों शख्सियतों की तुलना कर रहे हैं, उन्हीं पैमानों पर अगर महात्मा फुले को देखें तो क्या नज़र आता है। लेकिन कुछ कहने के पहले फुले के जीवन के अहम पड़ावों का विहंगावलोकन करना समीचीन होगा। 1848 - अपनी पत्नी सावित्रीबाई तथा उनकी सहपाठी/मित्रा फातिमा शेख के सहयोग से भारत में शूद्र अतिशूद्र लड़कियों के लिए पहले स्कूल की स्थापना, 1851 - सभी जाति की कन्याओं के लिए एक अन्य स्कूल, 1855 - कामगार लोगों के लिए रात्रि पाठशाला, 1856 - उनकी 'विभाजक' गतिविधियों के चलते उन पर जानलेवा हमला, 1860 - विधवा पुनर्विवाह की मुहिम, 1863 - विधवाओं के लिए एक आश्रयस्थल की शुरूआत, विधवाओं के केशवपन अर्थात बाल काटे जाने के खिलाफ नाभिकों की हड़ताल का आयोजन, 1868 - अपने घर का कुंआ अस्पृश्यों के लिए खोल देना, 1 जून 1873 - 'गुलामगिरी' उनकी बहुचर्चित किताब का प्रकाशन, 24 सितम्बर 1873 - 'सत्यशोधक समाज' की स्थापना, 1876-82 - पुणे म्युनिसिपल कौन्सिल के नामांकित सदस्य, 1882 - 'स्त्री पुरूष तुलना' की लेखिका एवं सत्यशोधक समाज की कार्यकर्ता ताराबाई शिन्दे की जोरदार हिमायत, जब उनकी उपरोक्त किताब ने रूढिवादी तबके में जबरदस्त हंगामा खड़ा कर दिया था, 11 मई 1888 - एक विशाल आमसभा में उन्हें 'महात्मा' की उपाधि प्रदान की गयी, 1889 - उनकी आखरी किताब 'सार्वजनिक सत्यधर्म' का प्रकाशन, 28 नवंबर 1890 - पुणे में इन्तकाल।

भारत में अंग्रेजों का शासन शुरू होने से पहले प्रजा को शिक्षा देना सरकार का दायित्व नहीं माना जाता था। महात्मा फुले के जन्म से पहले राजसत्ता तथा धार्मिक सत्ता ब्राह्मणों के हाथ में होने के कारण सिर्फ उन्हें ही धार्मिक ग्रंथ पढ़ने का अधिकार था। निम्न जाति के जिन व्यक्तियों ने पवित्र ग्रंथ पढ़ने का प्रयास किया तो उन व्यक्तियों को मनु के विधान के तहत कठोर सजायें मिली थी। दलितों की स्थिति जानने के लिए पेशवाओं के राज पर नज़र डालें तो दिखेगा कि वहां दलितों को सड़कों पर घूमते वक्त अपने गले में घडा बांधना पड़ता था ताकि उनकी थूक भी बाहर न निकले। वे सड़कों पर निश्चित समय में ही

निकल सकते थे क्योंकि उनकी छायाओं से भी सवर्णों के प्रदूषित होने का खतरा था। जाहिर सी बात है कि दलितों के लिए शिक्षा के बारे में सोचा भी नहीं जा सकता था। वर्ष 1813 में ईस्ट इंडिया कम्पनी द्वारा जारी आदेश के तहत शिक्षा के दरवाजे सभी के लिए खुल गये। वैसे सरकार ने भले ही आदेश जारी किया हो लेकिन जमीनी स्तर पर स्थिति बेहद प्रतिकूल थी। ब्राह्मणों के लिये ही एक तरह से आरक्षित पाठशालाओं में जब अन्य जाति के छात्रों को प्रवेश दिया जाने लगा तब उसका जबरदस्त प्रतिरोध हुआ था।

यह कहना अनुचित नहीं होगा कि 1848 में महिलाओं के लिये खोले अपने पहले स्कूल के जरिये फुले दंपति ने उस सामाजिक विद्रोह का बिगुल फूंका जिसकी प्रतिक्रियाएं 21वीं सदी में भी जोरशोर से सुनायी दे रही हैं। 1851 तक आते आते महिलाओं, शूद्रों अतिशूद्रों के लिये उनके द्वारा खोले गये स्कूलों की संख्या पांच तक पहुंची थी जिसमें एक स्कूल तो सिर्फ दलित महिलाओं के लिए था। जैसे कि उस समय हालात थे और ब्राह्मणों के अलावा अन्य जातियों में पढ़ने लिखने वालों की तादाद बेहद सीमित थी, उस समय इस किस्म के 'धर्मभ्रष्ट' करने वाले काम के लिये कोई महिला शिक्षिका कहां से मिल पाती। ज्योतिबा ने बेहतर यही समझा कि अपनी खुद की पत्नी को पढ़ लिख कर तैयार किया जाये और इस तरह 17 साल की सावित्रीबाई पहली महिला शिक्षिका बनीं। फातिमा शेख नामक दूसरी शिक्षित महिला ने भी इस काम में हाथ बंटाया। इस बात के विस्तृत विवरण छप चुके हैं कि शूद्रों अतिशूद्रों तथा स्त्रियों के लिए स्कूल चलाने के लिए इस दंपति को कितनी प्रताड़नाएं झेलनी पड़ीं यहां तक कि सनातनियों के प्रभाव में आकर ज्योतिबा के पिता गोविंदराव ने उनको घर से भी निकाला।

सावित्रीबाई एवं जोतिबा की शिक्षा की मुहिम ने किस तरह एक नयी अलख जगायी इसकी झलक 1855 में लिखे इस पत्र से मिलती है, जो उस वक्त 14 साल की मुक्ताबाई ने - जो खुद मांग नामक दलित जाति में जन्मी थी - लिखा था और पहली दफा अहमदनगर से प्रकाशित 'ज्ञानोदय' नामक पत्रिका में 'मांग महारों के दुख के बारे में' शीर्षक से छपा था। चौदह साल की वह लड़की कहती है कि,

ऐ पढ़े लिखे पंडितों, अपने खोखले ज्ञान की स्वार्थी रटंत बन्द करो और सुनो जो मैं कहना चाहती हूं।' अगर हम वेदों के आधार पर इन ब्राह्मणों के, महान पेटू लोगों के, तर्कों को खारिज करने की कोशिश करें, जो अपने आप को हमसे श्रेष्ठ मानते हैं और हमसे नफरत करते हैं, तब वह कहते हैं कि वेद उनकी अपनी सम्पत्ति है। जाहिर है कि अगर वेद सिर्फ ब्राह्मणों के लिए ही हैं, तो हमारे लिए नहीं हैं। हे भगवान, हमें अपना सच्चा धर्म बता दो ताकि हम अपनी जिन्दगी उसके हिसाब से जी सकें। वह धर्म, जहां एक व्यक्ति को ही विशेषाधिकार है और बाकी सभी वंचित है, इस पृथ्वी से समाप्त हो और हमारे दिमाग में यह कभी न आए कि हम इस धर्म पर गर्व करें....

लेकिन महात्मा फुले ने अपने काम को महज शिक्षा तक सीमित नहीं रखा। उन्होंने कई सारी किताबों के जरिये ब्राह्मणवाद से उत्पीड़ित जनता को शिक्षित जागरूक करने की कोशिश की। 'गुलामगिरी', 'किसान का कोड़ा', 'ब्राह्मण की चालबाजी' आदि उनकी चर्चित किताबें हैं। अपने रचनात्मक कामों के अन्तर्गत उन्होंने वर्ष 1863 में अपने घर में ही 'बालहत्या प्रतिबंधक गृह खोला। जानने योग्य है कि विधवा विवाह पर रोक की प्रथा के कारण विशेषकर ब्राह्मण जाति की तमाम महिलाओं को काफी प्रताड़ना झेलनी पड़ती थी। अगर किसी के भुलावे में आकर वे गर्भवती हुई तो बदनामी से बचने के लिये उन्हें उसको मारने के अलावा कोई चारा नहीं बचता था। ज्योतिबा-सावित्री ने महिलाओं को इस दुर्दशा से बचाने के लिये अपने घर में ही ऐसे गृह की स्थापना की। इसको लेकर समूचे पुणे में हैण्डबिल भी बांटे गये थे। बाल विधवाओं के बाल काटने से रोकने के लिये उन्होंने पुणे के नाईयों की एक हड़ताल भी संगठित की थी।

अपने कार्यों को सुचारू रूप से आगे बढ़ाने के लिये ज्योतिबा ने 1873 में सत्यशोधक समाज की स्थापना की। फुले की दृष्टि की व्यापकता का अन्दाजा इस बात से भी लग सकता है कि उसकी पहली कार्यकारिणी में हमें हिन्दू धर्म की विभिन्न जातियों के अलावा एक यहुदी और एक मुसलमान भी शामिल दिखता है। उन्हीं दिनों अपने दो मित्रों के साथ मिल कर 1873 में 'दीनबंधु' नामक अख़बार का प्रकाशन भी उन्होंने शुरू किया। 'स्त्री पुरूष तुलना' की रचयिता ताराबाई शिन्दे हों या पुणे के सनातनियों से प्रताड़ित पंडिता रमाबाई हों दोनों की मजबूत हिफाजत ज्योतिबा ने की।

जानने योग्य है कि सत्यशोधक समाज के कार्यकर्ता तथा फुले के सहयोगी श्री नारायण मेघाजी लोखंडे ने बम्बई की पहली ट्रेड यूनियन 'बॉम्बे मिलहैण्डस एसोसिएशन' की स्थापना की थी तथा उन्हीं के आन्दोलन की अन्य कार्यकर्ती ताराबाई शिन्दे अपनी किताब 'स्त्री पुरूष तुलना' के चलते एक तरह से पहली नारीवादी सिद्धांतकार मानी गयी हैं। उनके अन्य सहयोगी भालेकर ने ज्योतिबा की ही प्रेरणा से किसानों के संगठन का बीड़ा उठाया।

इस तरह हम देख सकते हैं कि स्त्री, शूद्र-अतिशूद्र के उत्पीड़न का प्रश्न रहा हो या उनकी शिक्षा का, जनता को सचेत करने के लिये अख़बारों पत्र-पत्रिकाओं के प्रकाशन मामला रहा हो या सेठों और ब्राह्मणों द्वारा साधारण जन के लिये रचे गये छलकपट का सभी की मुखालिफत में वे हमेशा आगे रहे। लेकिन उनका सबसे बड़ा योगदान यही कहा जाएगा कि उन्होंने वर्णाश्रम पर टिकी ब्राह्मणवाद की चौखट को जबरदस्त चुनौती दी और यह साबित किया कि ऊंच नीच अनुक्रम पर टिकी यह प्रणाली इन्सान को जोड़ने वाली नहीं है तोड़ने वाली है। यह स्वाभाविक ही था कि नवोदित उपनिवेशवादी संघर्ष द्वारा गढ़ी जा रही राष्ट्र की अवधारणा उन्होंने प्रश्नों के घेरे में खड़ी की। उनका साफ साफ सवाल था कि जातियों में बंटा यह समाज कैसे एक राष्ट्र हो सकता है।

अगर स्त्री, शूद्रों-अतिशूद्रों को शिक्षित करने के उनके प्रयासों पर फिर लौटे तो हम पाएंगे कि उन्होंने शोषितों को शिक्षित करने के साथ साथ शिक्षा का एक वैकल्पिक मॉडल भी प्रस्तुत करने की कोशिश की। मेकॉले के शिक्षा की फिल्टर पद्धति के मॉडल के बरअक्स अर्थात शिक्षा ऊंचे तबकों को प्रदान की जाये तो वह छन छन कर निचले तबकों तक आएगी, महात्मा फुले ने निचले तबकों को सबसे पहले शिक्षित करने पर जोर दिया। आज कल चर्चित 'पड़ोस में स्कूल' (neighbourhood schools) की नीति की भी उन्होंने हिमायत की। यहां तक कि शिक्षा में सरकारी हस्तक्षेप का आग्रह किया। भारतीय जनमानस पर प्रगट रूप में कायम मनु के विधान को चुनौती देते हुए उन्होंने दलितों शोषितों के लिए विशेष अवसर प्रदान करने की भी कोशिश की। उनकी मौत के चन्द साल बाद ही उनकी यह इच्छा कोल्हापुर के महाराजा शाहू महाराज ने पूरी की जो उन्हीं के आंदोलन से जुड़े थे।

1882 में अंग्रेज सरकार द्वारा शिक्षा संबंधी समस्याओं को जानने के लिए नियुक्त हंटर आयोग के सामने प्रस्तुत अपने निवेदन में फुले के इन शिक्षा सम्बन्धी विचार और ठोस रूप में मिले दिखते हैं। वे साफ कहते हैं कि ''मेरी राय है कि लोगों को, प्राथमिक शिक्षा कमसे कम 12 साल तक अनिवार्य कर देनी चाहिए'' उनका यह भी प्रस्ताव था कि ब्राह्मणों द्वारा दलित जातियों की पढ़ाई के रास्ते में खड़ी की जा रही बाधाओं को देखते हुए उनकी बस्ती में अलग स्कूल बनाने चाहिए। शिक्षा तथा अन्य स्थानों पर शोषित तबकों को वरीयता देने की बात करते हुए वे इसमें यह भी लिखते हैं कि अध्यापकों को ठीक तनख्वाह मिलनी चाहिए तभी वे ठीक से पढ़ा पाएंगे। लेकिन उनका सबसे रैडिकल सुझाव शिक्षा के पाठयक्रम को लेकर है जो उनके मुताबिक ''महज क्लर्क और शिक्षक तैयार करने की उपयोगिता तक सीमित है''। प्रचलित माध्यमिक शिक्षा को सामान्य लोगों की दृष्टि से अव्यावहारिक और अनुचित घोषित करते हुए उसका विकल्प तलाशने की मांग करते हैं।

उनका साफ मानना था कि शूद्रों अतिशूद्रों को जिन आपदाओं का सामना करना पड़ता है उसकी जड़ में ईश्वर के नाम से रचित या उसके द्वारा प्रेरित धार्मिक किताबों पर अंधविश्वास ही कारण होता है। इसलिए वह अंधश्रद्धा का खातमा करना चाहते थे। स्पष्ट है कि सभी स्थापित धार्मिक और पुरोहित तबकों को यह अंधविश्वास अपने उद्देश्य के लिए उपयोगी दिखता है, जो उसकी हिफाजत की पूरी कोशिश करते हैं। उनका प्रश्न था,

फुले का निष्कर्ष है कि यह बात भरोसे लायक नहीं लगती कि सभी धार्मिक किताबें ईश्वर द्वारा रचित हैं। यह बात मान लेना एक तरह से अज्ञान एवं पूर्वाग्रह का परिणाम है। सभी धर्म और धार्मिक किताबें मनुष्य द्वारा निर्मित हैं और वह उन्हीं तबकों के हित साधन की बात करती हैं, जो इनके माध्यम से अपने हित की पूर्ति चाहते हैं। अपने वक्त में फुले ऐसे एकमात्र समाजशास्त्री और मानवतावादी थे जो ऐसे साहसी विचारों को रख सकते थे। उनकी नज़र में, हर धार्मिक किताब अपने वक्त का उत्पाद होती है और उसमें जो सत्य पेश किए रहते हैं उनमें कोई स्थायी और वैश्विक वैधता नहीं होती। ऐसी किताबें उसके रचयिताओं के पूर्वाग्रहों और स्वार्थों से कभी मुक्त नहीं हो सकती।

आखिर हम ज्योतिबा फुले के योगदान के बारे में क्या कह सकते हैं जिन्होंने सामाजिक मुक्ति के क्षेत्र में एक रैडिकल प्रवाह के विकास में अहम भूमिका अदा की।

'सिलेक्टेड रायटिंग्ज आफ जोतिराव फुले' के सम्पादकीय में प्रोफेसर गो पु देशपाण्डे हमें बताते हैं, 'फुले का फ़लक व्यापक था, उनका प्रसार विशाल था। उन्होंने अपने वक्त के अधिकतर महत्वपूर्ण प्रश्नों - धर्म, वर्णव्यवस्था, कर्मकाण्ड, भाषा, साहित्य, ब्रिटिश हुकूमत, मिथक, जेण्डर प्रश्न, कृषि में उत्पादन की परिस्थितियां, किसानों की हालत आदि - को चिन्हित किया और उनको सैद्धान्तिक शक्ल देने की कोशिश की... क्या फुले को फिर समाज सुधारक कहा जा सकता है ? इस जवाब होगा 'नहीं'। एक समाज सुधारक उदार मानवतावादी होता है और फुले क्रान्तिकारी अधिक थे। उनके पास विचारों की समग्र प्रणाली थी, और वह उन प्रारम्भिक विचारकों में से थे, जिन्होंने भारतीय समाज मे वर्गों की पहचान की थी। उन्होंने भारतीय समाज के द्वैवर्णिक संरचना का विश्लेषण किया था, और सामाजिक क्रान्ति के लिए शूद्रों-अतिशूद्रों को अग्रणी कारकशक्ति/एजेंसी के तौर पर चिन्हित किया था। □□

(10 मार्च 2019 को 'देस हरियाणा' द्वारा स्थानीय महात्मा ज्योतिबा फुले सावित्रीबाई फुले पुस्तकालय में देश की पहली शिक्षिका सावित्रीबाई फुले की पुण्यतिथि के उपलक्ष्य में सेवानिवृत्त आईएएस अधिकारी शिव रमन गौड के काव्य-संग्रह नयी सुबह तक पर समीक्षा गोष्ठी का आयोजन किया गया। संगोष्ठी का शुभारंभ महात्मा ज्योतिबा फुले एवं सावित्रीबाई फुले की प्रतिमा पर पुष्प अर्पित करने के साथ हुआ।

संगोष्ठी में शिव रमन गौड ने अपने काव्य-संग्रह की कविताओं का पाठ किया। साहित्यकार माधव कौशिक ने कहा कि यह संग्रह संश्लिष्ट कथ्य की कसावट तथा सहज शिल्प की बुनावट की वजह से प्रभावपूर्ण तथा विचारोत्तेजक है। हरियाणा साहित्य अकादमी के निदेशक पूर्णमल गौड ने कहा कि एक रचनाकार का दायित्व है कि वह अपने समय की सच्चाईयों को उद्घाटित करे। सेवानिवृत्त आईएएस अधिकारी आर.आर. फुलिया ने शिव रमन को उनके काव्य-संग्रह को लेकर बधाई देते हुए कहा कि आज समाज में अध्ययन एवं विचार-विमर्श की संस्कृति को बढावा देने की जरूरत है। कपिल भारद्वाज, राजेश कासनिया, चंडीगढ डीएवी स्कूल की प्रिंसिपल विभा ने भी काव्य-संग्रह पर अपने विचार व्यक्त किए। सुनील थुआ ने अतिथियों का आभार व्यक्त किया। इस मौके पर राम कुमार आत्रेय, अरुण कैहरबा, कुमार विनोद, विपुला, राज कुमार जांगडा, विकास साल्याण, हरपाल शर्मा, ओमप्रकाश करुणेश, विजय विद्यार्थी, मनोज कुमार, डॉ कृष्ण कुमार, ब्रह्मानंद, रजविन्द्र चंदी, राजीव सान्याल सहित अनेक साहित्यकार मौजूद रहे। प्रोफेसर दिनेश दधिची ने विश्व साहित्य के विभिन्न संदर्भों का जिक्र करते हुए शिव रमन के काव्य-संग्रह के कथ्य और शिल्प पर बेबाक चर्चा की। प्रस्तुत है दिनेश दधिची द्वारा लिखित समीक्षा - सं.)

कविता में संवेदन व चिंतन का संश्लेषण- डॉ. दिनेश दधीचि

आज़ादी के बाद जब देश के पुनर्निर्माण का दौर आरंभ हुआ, तो निर्माण के उत्साह और विकास की सरगर्मियों के बीच एक नयी पीढ़ी के संघर्षों की भी शुरुआत हुई। इस नयी पीढ़ी को पुनर्जागरण के स्वतंत्रता से पहले वाले दौर के ऊंचे आदर्श एवं जीवन-मूल्य विरासत में मिले थे। यही आदर्श और जीवन-मूल्य आने वाले संघर्षों में इस पीढ़ी का संबल बनने वाले थे। इस पीढ़ी के लिए कविता कर्म दरअसल उन जीवन-मूल्यों की रक्षा करते हुए विपरीत परिस्थितियों में भी अपने इन्सान होने की गरिमा बनाए रखने का गंभीर और महत्त्वपूर्ण कार्य है। शिव रमन को मैं उसी पीढ़ी के प्रतिनिधि के रूप में देखता हूं, जिसके लिए कविता की रचना किसी विशेषाधिकार युक्त मंच से संपूर्ण मानवता को संबोधित करने का उपक्रम नहीं है। वह तो अपने आसपास के आम लोगों के साथ अपने ख़ास रिश्ते को लेकर कविता के सृजन द्वारा पूरी गंभीरता से जुटा है।

तेज़ी से बदलते यथार्थ की त्रासद विडंबनाओं और इंसानियत के उच्चादर्शों के बीच टकराहट की जो स्थिति बनती है, उसकी बेचैनी से शिव रमन की कविताएं अंकुरित होती हैं। सूरज, आग, पानी और हवा जैसे बिंब और प्रतीक तथा अन्य छवियां शिव रमन की कविताओं में बार बार हमारे सामने आती हैं। परंतु कवि मात्र शब्द चित्र प्रस्तुत नहीं करता। आधुनिकतावादी कवि-समीक्षक एज़रा पाउंड ने तीन तरह की कविता का ज़िक्र किया है। एक तो ऐसी, जिसमें शब्दों का संगीत और सौंदर्य प्रधान होता है (melopoeia)। दूसरी ऐसी जिसके बिंब पाठक को आकृष्ट करते हैं (phanopoeia) और तीसरी ऐसी जिसमें शब्दों के निहितार्थ और उनसे जुड़े संदर्भों पर ध्यान केन्द्रित करते हुए बौद्धिक तर्क का प्रयोग होता है। शिव रमन की रचनाओं में मौलिक शब्द-विन्यास के प्रति एक आग्रह तो है ही, बिंबों और प्रतीकों का सहज प्रयोग भी है और दार्शनिक तेवरों

के साथ तर्कशीलता भी। बिंबों के विषय में हमें यह देखना होता है कि वे सहज रूप में आएं, कविता पर थोपे गए प्रतीत न हों और अस्पष्टता तथा दुरूहता पैदा न करें।

कविता संग्रह का शीर्षक 'नयी सुबह तक' और कवि का वक्तव्य 'बस इतना ही…' दोनों स्पष्ट रूप से संकेत देते हैं कि शिव रमन वर्तमान की चुनौतियों के प्रति सचेत हैं और साथ ही भविष्य की संभावनाओं को लेकर विश्वास और आस्था के साथ प्रतिबद्ध हैं और प्रयास करते रहने के लिए कटिबद्ध हैं। ये प्रयास इन चार बातों को ले कर हैं: मानव संवेदनशीलता लुप्त न हो।

अपने गौरवमय अतीत के ताने-बाने को बचाए रखें। वर्तमान में अपनी आध्यात्मिक संस्कृति को सहेज कर रखें। सार्थक जीवन की एक सौगात, धरोहर और विरसा अपनी आने वाली संतानों के लिए छोड़ कर जाएं। शीर्षक और इस वक्तव्य की पुष्टि संग्रह की कविताओं से भी हो जाती है। रचनाकार की सदाशयता तो असंदिग्ध है ही। ज़ाहिर है कि जब हमारे चारों तरफ़ सफल होने के लिए सही-ग़लत सभी तरह के साधन अपनाए जा रहे हों, मानव-मूल्यों की बलि चढ़ रही हो और हमारी संवेदनशीलता का क्षरण हो रहा हो, तो कवि की चिंताएं वाजिब हैं। कवि के शब्दों में, 'सहारा मरु फैल रहा है'। इसी चिंता में से ही आज की रचनाशीलता का प्रस्फुटन होता है। शिव रमन के पूर्व कविता संग्रह 'आम लोग' में यह चिंता एक आंदोलित करने वाली बेचैनी के रूप में मौजूद थी। समय के साथ उस बेचैनी में एक तरह का ठहराव और नियंत्रण ज़रूर आ गया है। वह चिंता और बेचैनी अब इस सावधानी के स्तर पर आ गई है जहां 'प्रयास' करने की ज़रूरत ज़्यादा स्पष्ट रूप से रेखांकित होती है।

वाचालता से दूर अभिव्यक्ति के स्तर पर भी यही ठहराव और प्रौढ़ता देखी जा सकती है। बल्कि ऐसे वाक्यांश रिफ्रेन या अनुगूंज की तरह कवि के अंतर्मानस में आवृत्ति करते रहते हैं, जिनसे गीतात्मकता का आभास होता है। कविताएं कहने को छंदमुक्त हैं, लेकिन इनमें अंतर्निहित छांदसिकता की उपस्थिति का एहसास बार-बार होता है। उदाहरण के तौर पर, 'मुझे इस बात का ग़म था', 'कोई मतलब के बिना मिलता नहीं ज़माने में', 'वो तो झुक-झुक के सलाम करते हैं', 'बातें तो बहुत हैं कहने को', 'मुझे शामे-ग़म की रातों का डर है' आदि।

संग्रह के तीसरे खंड 'तेरी ख़ुशबू' में रूमानियत का स्वर प्रधान है। माधव कौशिक ने पुस्तक की भूमिका में रागात्मकता और उदात्त प्रेम की अभिव्यक्तियों की ओर ध्यान आकर्षित किया है। इनमें से कई रचनाओं में किसी अनाम दोस्त को संबोधित किया गया है। इसी लय से जुड़ा हुआ आध्यात्मिकता का रुझान भी दूसरे खंड 'नीलकंठ' की रचनाओं में दिखाई देता है। ये तत्त्व 'आम लोग' की कविताओं में कम से कम सतह पर दिखाई नहीं देते थे। अध्यात्म और कविता के अंत:संबंधों की बात करें, तो यह कोई संयोग मात्र नहीं है कि बाइबिल के अपवाद को छोड़ कर लगभग सभी धर्मों के ग्रंथ और प्रसार सामग्री कविता के रूप में ही उपलब्ध हैं। कविता और धर्म या अध्यात्म के इस रिश्ते की परंपरा बहुत पुरानी है। हम यह भी नहीं कह सकते कि सामाजिक सोद्देश्यता और अध्यात्म के बीच कोई तालमेल या समन्वय संभव नहीं है। कबीर का उदाहरण हमारे सामने है। हमें यह भी नहीं भूलना चाहिए कि हर इंसान की मूलभूत ज़रूरतों में आध्यात्मिक ज़रूरतें भी अनिवार्यतः शामिल हैं। समाज में फैलता उपभोक्तावाद सुख का साधन नहीं है। उसका प्रतिकार कवि अध्यात्म से करता है।

बहरहाल पाठक की तटस्थता को अपने ढंग से तोड़ने वाली इन कविताओं का रचनाकार वस्तुत: उस जीवन-दृष्टि के कारण ही ऐसा कर पाता है, जो आज़ादी के बाद वाली पहली पीढ़ी को विरासत में मिली और पिछले साठ-सत्तर वर्षों में विकसित हुई। इस पीढ़ी के सरोकार पुनर्जागरण के दौर के उच्चादर्शों और जीवन -मूल्यों से प्रेरित रहे हैं। शिव रमन इसी पीढ़ी के प्रतिनिधि हैं।

पूंजीवाद और ब्राह्मणवाद के खिलाफ था जोतिबा फुले और डा. आंबेडकर का संघर्ष

□ प्रस्तुति - विकास साल्याण

सत्यशोधक फाऊंडेशन और डा.ओमप्रकाश ग्रेवाल अध्ययन संस्थान, कुरुक्षेत्र की ओर से डा. भीम राव अंबेडकर और जोतिबा-फुले के जयंती के उपलक्ष में 12 अप्रैल 2019 को विचार-गोष्ठी का आयोजन किया गया। इसका विषय - मौजूदा दौर में दलित उत्पीड़न के आयाम। इसमें मुख्य वक्ता के तौर पर प्रख्यात दलित चिंतक और जन मीड़िया के संपादक अनिल चमड़िया थे। उन्होंने बाबा साहेब अंबेडकर द्वारा सविधान सभा के समक्ष भाषण का जिक्र करते हुए अपनी बात की शुरुआत की।उन्होंने जॉन स्टुअर्ट मिल की चेतावनी का उल्लेख किया - अपनी स्वतंत्रता को एक महानायक के चरणों में समर्पित न करें या उस पर विश्वास करके उसे इतनी शक्तियां न प्रदान कर दें कि संस्थाओं को तबाह करने में समर्थ हो जाए। आज भारतीय लोकतंत्र में जिस तरह से नायकों की पूजा हो रही है और जन साधारण की आवाज गुम हो रही है उनकी चेतावनी याद आती है और लोकतंत्र के रक्षकों को अपना कर्तव्य की निभाने की आह्वान कर रही है।

धर्म के क्षेत्र में भक्ति आत्मा की मुक्ति और मोक्ष का मार्ग हो सकता है , लेकिन राजनीतिक क्षेत्र में भक्ति या नायक पूजा पतन और तानाशाही का मार्ग होता है। उन्होंने कहा ने कि डा. अंबेडकर के विचारों पर हम सीमित दायरे में हम बात करते हैं, इसे तोड़कर एक बड़े दायरे में बात करने की आवश्यकता है। डा. अंबेडकर ने जात-पात तोड़क मंडल के लिए तैयार किए अध्यक्षीय भाषण में जिसे एक पुस्तिका के रूप में प्रकाशित किया था उसके पहले ही पन्ने पर एक स्कोटिश दार्शनिक और कवि की पंक्तियों का उल्लेख किया था - जो तर्क नहीं करेगा वो धर्मान्ध है, जो तर्क नहीं कर सकता वो मूर्ख है और जिसमें तर्क करने का साहस नहीं है वह दास है।

अनिल चमड़िया ने कहा कि उत्पीड़न घटना नहीं, बल्कि एक विचारधारा है। उत्पीड़न की जब हम बात करते हैं तो हम घटनाओं की बात करते हैं तो उसकी जड़ की और विमर्श की बात नहीं करते। हमेशा उत्पीड़न की अनेक घटनाओं का जिक्र करके उत्पीड़न की गाथा का वर्णन करते हैं। उत्पीड़न की घटनाएं क्यों होती है उसके क्या कारणों और उसके कारणों की गहराई तक जाना चाहिए और इन उत्पीड़न के कारणों को दूर करने के जो रास्ते हमने निकाले थे वो क्यों विफल हुए इसकी तह तक हमें जाना चाहिए और मंथन करना चाहिए।

डा. भीमराव अंबेडकर की समग्र विचारधारा को एक बिन्दू या एक शब्द में कहे तो वो क्या चाहते थे - वो समतामूलक समाज का निर्माण करना चाहते थे। दूसरी तरफ उनके समकालीन बाल गंगाधर तिलक भी एक राष्ट्र का निर्माण करना चाहते हैं

जिनका मानना था कि जो स्त्री और अछूत के लिए शिक्षा राष्ट्र हित में नहीं है। यह वह दौर था जिसमें धर्म और राष्ट्र को परिभाषित किया जा रहा था उसकी व्याख्या की जा रही थी। ठीक इसी समय जोतिबा फुले और अंबेडकर जैसे जनबुद्धिजीवी अछूतों और स्त्रियों की शिक्षा के लिए ढांचे बना रहे थे। जोतिबा फुले और सावित्री बाई फुले स्कूल खोल रहे थे और दलितों व स्त्रियों की शिक्षा के लिए संघर्ष कर रहे थे।

दलित उत्पीड़न का इतिहास बहुत पुराना है और लम्बे समय से उत्पीड़न हो रहा है पर आज के दौर में जो उत्पीड़न हो रहा है उसमें उत्पीड़न भी हो रहा है और उत्पीड़क गर्व भी किया जा रहा है। अर्थात मारा भी जाएगा और रोने भी नहीं दिया जाएगा। आज का उत्पीड़न राजनीतिक हमला है।यदि इस दृष्टि से नहीं देखेंगें तो इसको न तो समझ पाएंगें और न ही इसके बारे में एक नजरिया नहीं बन पाएगा। जैसे रोहित वेमुला की हत्या कैसे हुई उसे समझना होगा। रोहित वेमुला समाज को बदलने और सामाजिक-संस्थाओं में गैर-बराबरी की स्थिति को खत्म करने के लिए संघर्ष कर रहा था।

पीट पीट कर मारने की घटनाओँ की ओर संकेत करते हुए इसे सामाजिक न्याय की शक्तियों के खतरा बताया और 15 साल पहले हरियाणा के दुलीना पुलिस चौंकी से निकाल कर दलितों को मारे जाने की घटना का जिक्र करते हुए वर्तमान समय में इसके उभार के सामाजिक-आर्थिक कारणों की ओर संकेत किया। उन्होंने कहा कि इसके कारण हमारे ढांचे में हैं उसे समझने की आवश्यकता है। डा. आंबेडकर और जोतिबा फुले का संघर्ष पूंजीवाद और ब्राह्मणवाद के खिलाफ था। आज इनका विकराल रूप सामने आ रहा है। न्याय की पक्षधर शक्तियों को संघर्ष करने के लिए एकजुट होने की आवश्यकता है।

इस परिचर्चा में प्रेम सिंह, विजय विद्यार्थी, डा. कृष्ण कुमार, राजविंद्र चंदी, रितू, सुमन ने भाग लिया। इसका संचालन अश्विनी दहिया ने किया और अध्यक्षता ओमप्रकाश करुणेश व प्रोफेसर सुभाष चंद्र ने की। □□

रानी देवी, शोधार्थी,
हिन्दी-विभाग, कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र

यह तीसरा सृजन उत्सव था। मैंने तो पहला ऐसा उत्सव देखा है जिसमें कुछ अलग, कुछ नया सीखने को मिलता है। हरियणा तक ही सीमित नहीं था, परन्तु अब यह हिमाचल, दिल्ली व अन्य राज्यों के लेखक आए थे। उत्सव के आरंभ में प्रो. चौथी राम यादव जी ने कितने विस्तृत रूप से समझाया। सृजन वहां होता है जहां संघर्ष होता है। व्यक्ति कैसे-कैसे संकटों को झेलकर आगे बढ़ता है। लेखक समाज की चुनौतियों को साहित्य के माध्यम से बदलते हैं। पहले भारत में विभिन्न विचारधाराओं के लोग थे, फिर भी सामजस्य था, परन्तु आज तो अन्याय को न्याय कहा जाता है और व्यक्ति को मानसिक गुलाम बनाया जा रहा है।

अम्बेडकर, भगत सिंह भी इन जातिगत भेदभावों को खत्म करने के लिए संघर्ष किया, ताकि समानता का भाव पैदा हो, क्योंकि आज भी हम उच्च-निम्न, जाति-भेदभाव में ही उलझे हुए हैं। इनसे आगे देखते ही नहीं कि और समाज में क्या कुछ घटित हो रहा है। जो बातें कबीर ने कही थी वो आज सार्थक हो रही हैं।

सृजन उत्सव में युवा मंच का कार्यक्रम हुआ जो बहुत ही शानदार था, क्योकि हर जगह लेक्चर की तरह होता है कहीं प्रश्न पूछने का मौका ही नहीं मिलता, कहीं भी विचार-विमर्श व तर्क नहीं होते, परन्तु यहां इतने बड़े मंच पर भी सवाल-जवाब हुए। अनेक विधाओं के व्यक्तियों लेखकों को जानने का मौका मिला। आज का युवा परम्परा व आधुनिक के बीच उलझ गया है और साम्प्रदायिकता की मुठभेड़ में उलझकर रह गया है।

इसमें महिला लेखिकाओं व राजस्थानी, पंजाबी लेखकों को भी सुनने का मौका मिला। और हर उत्सव की तरह अबकी बार भी नाटक हुआ 'हम देर करते नहीं हो जाती है' के माध्यम से राजनीति की रणनीतियों को समझा और व्यक्ति अपनी नौकरी पैसे के लिए कुछ भी कर सकता है। कितने संवेदनहीन हो गए हैं। हर जगह पर निम्न व्यक्ति ही संघर्ष करता है।

ऐसा सृजन उत्सव हर वर्ष होना चाहिए, ताकि इससे कितनी नई चीजें सीखने को मिलती हैं। राजनीति, समाज, संस्कृति के बारे जानने का मौका मिलता है और अलग-अलग भाषाओं के बारे में और लेखकों से सीखते हैं। समाज से संबंधित विषयों पर सोचने व जानने की उत्सुकता पैदा होती है और समस्याओं को दूर करने के क्या-क्या माध्यम हो सकते हैं।□□

शिफाली, छात्रा एम.ए.
हिन्दी विभाग, कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र

हरियाणा सृजन उत्सव का यह तीसरा कार्यक्रम था, परन्तु मैं इस तरह के कायक्रम में पहली बार शामिल हुई, जिसमें साहित्य को एक उत्सव की तरह मनाया जाए और यह दो दिनों तक चला। नाम को देखकर इसमें क्षेत्र विशेष से संबंधित होने की शंका होती है, परन्तु इसमें आयोजित कवि सम्मेलन में पंजाबी, हरियाणवी, राजस्थानी, हिन्दी आदि भाषा के कवियों को शामिल किया जाना अकल्पनीय-सा लगता है। सबसे अच्छी बात मुझे जो इस उत्सव की लगी, वह थी परम्परागत रूढ़ियों को तोड़ना। इस उत्सव में दीप प्रज्जवल करना व पुष्प गुच्छ भेंट करने जैसी किसी परंपरा को स्थान नहीं दिया गया।

चौथीराम जी द्वारा दिया गया लेक्चर तो अविस्मरणीय था और जो कृष्ण चन्द्र जी की कहानी 'जामुन का पेड़' पर नाटक दर्शाया गया और उसकी जो मंच पर अभिव्यक्ति की गई वह अतुलनीय थी। उन्होंने इस नाटक के माध्यम से सरकारी व्यवस्था की वास्तविक तस्वीर को उजागर किया। इस कार्यक्रम के माध्यम से साहित्य के प्रत्येक पक्ष व पाठकों के साथ साहित्य के संबंध को उजागर किया गया।

परन्तु मुझे कुछ खामियां भी दिखाई दी। जैसे कार्यक्रम अपने तय किए गए समय पर शुरू नहीं हो पाया और जो प्रश्न-उत्तर पूछे गए, वह भी जिनका उनके वक्तव्य से कोई संबंध नहीं था। परन्तु इतने बड़े स्तर पर किए किए कार्यक्रम में इस प्रकार की खामियां कोई मायने नहीं रखती। अतः पूर्ण रूप से यह एक उच्च कोटि का कार्यक्रम था। □□

हरियाणा सृजन उत्सव का रूप-रंग निराळा देख्या।
इस मेले म्हं हर माणस का ढंग बटेऊ आळा देख्या।
दूर-दूर तै आकै सब नै बाळे दीवे नवे-नवे,
कला, साहित्य, संस्कृति का होता नवा उजाळा देख्या।
- रिसाल जांगड़ा

निखरा-निखरा उजला-उजला पहले दो से खास नया
उत्सव है यह नव सृजन का छाया है उल्लास नया
इस धरती से उस अम्बर तक संघर्षों का सृजन है
बहुत बधाई देस हरियाणा को रच डाला इतिहास नया।
- सत्यवीर नाहड़िया